शहीद पं० लेखराम

लेखकः
(प्रिं० अश्विनी कुमार शर्मा)

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या
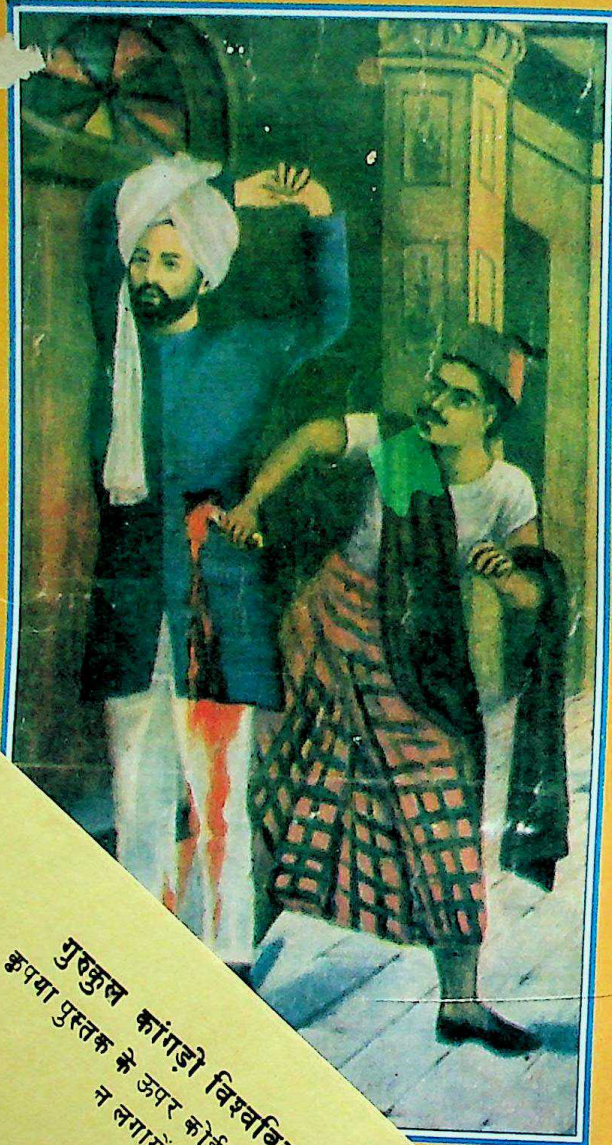
अमर शहीद पं० लेखराम 'आर्य मुसाफिर' का जीवन चरित्र

बलिदान शताब्दी के अवसर पर
श्री हरबंस लाल शर्मा, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा,
पंजाब
को सप्रेम भेंट।

प्रिं० अश्विनी कुमार शर्मा
दोआबा कालेज
जालन्धर

३०-५-१९९७

मूल्य : १० रूपये

।। ओ३म ।।

अमर शहीद पं॰ लेखराम "आर्य मुसाफिर" का जीवन चरित्र

लेखक :- प्रि॰ अश्विनी कुमार शर्मा
दुआबा कालिज, जालन्धर

प्रकाशक :- पं॰ हरबंस लाल शर्मा
प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब

१२.६
४८

मुद्रक :- शिवाँश लेजरज़ एंण्ड आफसेट प्रिन्ट्रज़,
चौक बस्ती गुज़ा, जालन्धर

मूल्य :- १० रूपये

बलिदान जयन्ती पर मेरी सप्रेम भेंट

प्रिं. अश्विनी कुमार शर्मा

अमर बलिदानी आर्य वीर श्री पं॰ लेखराम जी ने अपने ३९ वर्ष के अल्प जीवन में आर्य समाज की वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया । सरकारी नौकरी छोड़ी, पिता जी की मृत्यु हो गई और स्वयं आर्य समाज के प्रचार के कार्य में व्यस्त रहे, छोटे भाई तोता राम का देहावसान हुआ और पं॰ जी दीनानगर एवं अन्य स्थानों में शास्त्रार्थ में मग्न थे, इकलौता पुत्र अति रुग्णावस्था में मृत्यु शय्या पर पड़ा था और आर्य वीर यह सोच कर घर से निकल पड़ा कि अपने एक पुत्र से जाति के वे ५ पुत्र प्यारें है जिन्हें हिन्दू धर्म से विमुख करके मुसलमान बनाया जा रहा है। अपने सवा साल के पुत्र सुखदेव की अन्त्योष्टि के दूसरे दिन अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी को घर पहुँचा कर धर्म प्रचार कार्य के लिए मैदान में निकल पड़ते हैं । आर्य मुसाफिर का घर में क्या काम ? दस वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात, ग्रम-ग्राम, नगर-नगर, डगर-डगर की भीषण एवं कष्टदायी यात्रा से आर्य मुसाफिर तनिक भी विचलित न हुए और लगभग ३००० पृष्ठ की ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र सम्बन्धी सामग्री एकत्रित की, किन्तु असमय पर बलिदान हो जाने के कारण वे जीवन चरित्र पूर्ण न कर सके । अन्त में यह ग्रन्थ श्री आत्माराम अमृतसरी ने पं॰ जी द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर पूर्ण किया ।

१८५८ में उन का जन्म हुआ, १८७५ में १७ वर्ष की आयु में वे पुलिस में भर्ती हुए, १८८० में वह आर्य समाज पेशावर के सदस्य, फिर प्रधान बने, १७ मई, १८८१ को उन्होंने ऋषि दयानन्द के अजमेर में दर्शन किए। २५ सितम्बर १८८४ को सार्जेन्टी से त्याग-पत्र देकर सेवा-मुक्त हुए और ७ मार्च १८९७ में उन्होंने वीर गति प्राप्त की । उन्हें पूर्ण रुपेण आर्य समाज की सेवा करने के लिए केवल १३ वर्ष मिले जिस में उन्होंने लगभग ३३ ग्रन्थों की रचना की, अनगिणत व्याख्यान दिए, शास्त्रार्थ किए और अनेक हिन्दु भाईयों को मुसलमान होने से बचाया एवं अनेकों मुसलमान हुए भाईयों को पुनः

शुद्ध कर के अपने धर्म में लौटा कर, उन्हें स्वजाति एवं धर्म पर मान करना सिखाया।

७ मार्च १८९७ को प्रात: २ बजे उन के प्राण पखेरू उड़ गए। अन्त समय में भी उन को आर्य समाज के प्रचार एवं प्रसार की ही चिन्ता थी। वे पूर्ण रूपेण शान्त थे। न घर वालों की चिन्ता, न विधवा माता के सम्बन्ध में कोई दु:ख, न पत्नी के सम्बन्ध में कोई मोह, न मृत्यु से भय, न घातक को पकड़वाने हेतु कोई इच्छा या बदला लेने की भावना। उन का अन्तिम सन्देश आर्य जगत् के लिए ही था :-

"*आर्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए*"

वे आर्य समाज के लिए जीए और आर्य समाज के लिए ही उन्होंने जीवन बलिदान कर दिया। पतंगा जल गया ताकि शमा जलती रहे। पं० लेखराम की अन्तड़ियों का खून प्रत्येक आर्य बन्धु से बलिदान की पुकार करता है, उन की पत्नी लक्ष्मी देवी की अँगुलियों पर घातक की छुरी के घाव आज भी हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत हैं कि स्त्री-जाति के साथ हो रहे किसी भी अन्याय को आर्य समाज सहन नहीं करेगा। पं० लेखराम जी के बलिदान ने धर्म पर मर मिटने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को प्रेरणा दी और अब्दुल रशीद के पिस्तौल की तीन गोलियों ने सत्य-धर्म के प्रचारक वीर सन्यासी का प्राणान्त कर दिया। पं० लेखराम के पद-चिह्नों पर चलते हुए लाला लाजपत राय ने अँग्रेज पुलिस की लाठियों के प्रहार सहे और कहा कि अँग्रेज पुलिस की लाठी का प्रत्येक प्रहार अँग्रजी साम्राज्य के कफन का कील सिद्ध होगा और हुआ भी ऐसे ही।

अमर शहीद पं० लेखराम जी की बलिदान शताब्दी पर मैंने उन को श्रद्धा-सुमन अर्पण करने हेतु यह पुस्तक लिखी है। मुझे प्रसन्नता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं० हरबंस लाल शर्मा जी ने इसे अपने **''राज कुमारी हरबंस लाल धर्मार्थ ट्रस्ट"** की ओर से छपवाने की कृपा की है। आर्य जगत् की महान विभूति , यति मण्डल के प्रधान श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर का आभारी हूँ जिन्होंने सदा की भांति अपना आर्शीवाद दिया है। अपने कालेज के प्राध्यापक प्रो० सोम नाथ शर्मा एवं डा० नरेश कुमार (अध्यक्ष संस्कृत विभाग) का भी आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक की छपवाई में मुझे अत्यन्त सहयोग दिया है।

मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक पाठकों को रुचिकर लगेगी। यदि पाठक पं० लेखराम के जीवन की घटनाओं से प्रेरित हो कर अपने भावी जीवन को संवार सकें तो मेरा प्रयास सफल होगा।

ओं शान्ति !

विनीत,
अश्विनी कुमार शर्मा
प्रिंसीपल
दोआबा कालेज,
जालन्धर
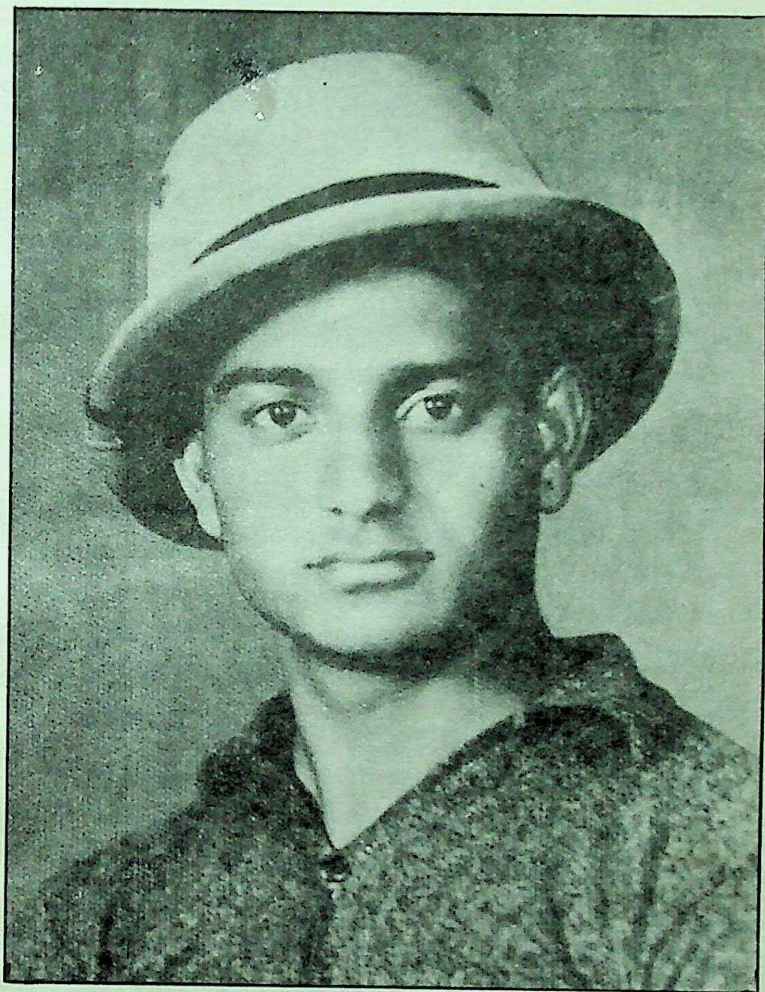
पं॰ हरबंस लाल शर्मा जी का युवास्था का एक चित्र
जब वे वायुसेना में कार्यरत थे।

पं॰ हरबंस लाल शर्मा-एक व्यक्तित्वं

धर्म वीर पं॰ लेखराम की बलिदान शताब्दी के सुअवसर पर अमर बलिदानी की स्मृति में उन के जीवन चरित्र सम्बन्धी पुस्तक लिख कर आर्य जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की मेरी इच्छा शायद एक इच्छा ही बन कर रह जाती और यह पुस्तक आप बन्धुओं तक कभी न पहुँच पाती, यदि इस की छपवाई का पूर्ण व्यय श्री पं॰ हरबंस लाल जी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब अपने ऊपर न लेते। वर्ष १९९६ में आर्य बन्धुओं एवं यति मण्डल द्वारा आयोजित पद् यात्रा दयानन्द मठ दीनानगर से प्रारम्भ हुई और सारे पंजाब में नगर-नगर डगर-डगर होती हुई लेखराम नगर कादियाँ में सम्पन्न हुई। रास्ते में कई स्थानों पर मेरे व्याख्यान हुए और पं॰ लेखराम जी की कई घटनाएं वर्णन करते हुए मैंने आर्य जाति को ३० मई से १ जून १९९७ तक कादियां में शाताब्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। ऐसा व्याख्यान मैंने पद-यात्रा के प्रथम दिवस दयानन्द मठ दीना नगर में दिया और अन्तिम व्याख्यान कादियां में भी दिया। पं॰ हरबंस लाल जी ने मेरे दोनों व्याख्यान सुने। दोनों दिन हम दोनों ने इक्ठे उनकी गाड़ी में सफर किया। मार्ग में पं. जी महाराज ने मुझे पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी और कहा कि इन सब घटनाओं को एकत्रित कर के आप लिख दें, पुस्तक की छपवाई का पूर्ण व्यय वह अपने "राज कुमारी हरबंस लाल धर्मार्थट्रस्ट" से देंगे। इस प्रकार मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई। इस पुस्तक के पहले संस्करण में हमने ३००० प्रतियां छपवाई हैं।

श्री पं॰ हरबंस लाल जी एक श्रेष्ठ आर्य है, धनी भी है और दानी भी है, मधु-भाषी, सदाचारी एवं कर्मठ कार्य-कर्त्ता है। इस का हर पल आर्य समाज के लिए है और वे अनेक संस्थाओं से सम्बन्धित हैं। श्री वीरेन्द्र जी के देहावसान के पश्चात ३ जनवरी १९९४ को आप को सर्व-सम्मति से आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान निर्वाचित कर दिया गया और तब से आप लगातार सर्व-सम्मति से सभा प्रधान चुने जाते रहे है। आप गुरु विरजानन्द स्मारक समिती ट्रस्ट करतारपुर के भी कई वर्षों से प्रधान है और इन के कार्यकाल में इस स्मारक ने अभूतपूर्व उन्नति की हैं। पंजाब के अतिरिक्त वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली नई दिल्ली के भी वरिष्ठ उप-प्रधान हैं। पंजाब के अतिरिक्त दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं अन्य प्रान्तों के आर्य बन्धु इन से भली भांति परिचित हैं।

आप गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की वित्त समिति के सदस्य और सीनेट के भी सदस्य हैं। आप आर्य सी॰ सै॰ स्कूल बस्ती गुजां जालन्धर के पिछले २२ वर्षों से प्रधान हैं। आप लन्दन आर्य समाज में जाकर वैदिक नाद बजा चुके हैं।

इन का जन्म २ फरवरी १९२० को रुड़का कलां ग्राम (जालन्धर ज़िला) में हुआ। इन के पिता पं॰ कर्मचन्द शर्मा और माता श्रीमती लाल देवी दोनों बड़े धार्मिक विचारों के थे। उनके विचारों का प्रभाव हमारे शर्मा जी पर भी पड़ा। इन के पिता जी कराची आर्य समाज के प्रधान भी रहे। इनका यज्ञोपवीत संस्कार आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान और "यज्ञ रुप प्रभु हमारे भाव उज्वल कीजिये" भजन के रचयिता पं॰ लोकनाथ जी ने किया। इन का विवाह श्रीमती राजकुमारी शर्मा से हुआ और मज़े की बात है कि विवाह-संस्कार भी पं॰ लोकनाथ जी द्वारा पूर्ण वैदिक रीति के अनुसार हुआ। बचपन से ही पं॰ हरबंस लाल जी आर्य समाज से जुड़ गए। इन के चाचा पं॰ मुरारी लाल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कोषाध्यक्ष एवं महामन्त्री रहे।

पं॰ हरबंस लाल जी ने भारतीय वायुसेना में १० वर्ष तक नौकरी की और १९४८ में स्वतन्त्रता के पश्चात् दासता की नौकरी छोड़ दी और साईकल पाट्‌र्स का काम बाद में विजय साईकिल्ज एण्ड स्टील तथा एच॰ आर॰ फोरजिन्ग प्राईवेट लि॰ के नाम से जालन्धर में प्रसिद्ध उद्योग चला कर उद्योग जगत में ख्याति प्राप्त की है। जैसे जैसे इन का उद्योग बढ़ता गया वैसे-वैसे पं॰ जी के दानी हाथ भी खुलते गए और आप प्रत्येक वर्ष लाखों रुपए दान करते हैं। आप आर्य समाज के भामा शाह हैं, आप प्रत्येक संस्था को दान देते हैं और कभी भी कोई प्रार्थी खाली हाथ नहीं लौटता। इन की धर्म-पत्नी माता राजकुमारी की भी यज्ञ और आर्य समाज में बहुत श्रद्धा है, इन के तीन पुत्र श्री सुदर्शन कुमार शर्मा, श्री नरेश कुमार शर्मा, श्री सुरेश कुमार शर्मा और सपुत्री श्रीमती सरला शर्मा सभी सद्गृहस्थी हैं और आर्य समाज के प्रत्येक अधिवेशन और सत्संग में बड़ी रुचि लेते है।

ईश्वर इन पर और इन के परिवार पर ऐसी ही धर्म कर्म करने की लग्न बनाए रखे।

३०-५-१९९७ **अश्विनी कुमार शर्मा**

वैदिक धर्म एवं आर्य जाति के रक्षक अमर शहीद पं॰ लेखराम जी

सर्वानन्द सरस्वती जी

पं॰ लेखराम जी का सारा जीवन वैदिक धर्म व आर्य जाति के लिए समर्पित था। पं॰ जी की एक ही धुन थी "केवल वैदिक धर्म का प्रचार।" वे वैदिक धर्म की पुष्टि के लिए व्याख्यान देते थे और शास्त्रार्थ करते थे। उन के व्याख्यानों से इस बात को विशेष बल मिलता था कि वैदिक धर्म ही मनुष्य का वास्तविक धर्म हैं। उन का जीवन तप, त्याग और कार्य कुशलताओं से परिपूर्ण था। महात्मा मुन्शी राम जी से मिलकर उन्होंने कई वर्षों तक वेद प्रचार किया।

पण्डित जी ने अपने जीवन में अनेक बार विधर्मियों से शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थ हेतू पं॰ जी एक बार कादियां के मौलाना के पास पहुंचे। उनके प्रश्नों का उत्तर न दे सकने और पं॰ जी से पराजित होने के कारण उन्होंने पं॰ जी को शहादत का जाम पिलाना ही अपने लिए बेहतर समझा। इस शास्त्रार्थ में मौलाना की बुरी तरह हार हुई और पं॰ जी सदा के लिए यशस्वी हुए। इस तरह पण्डित जी ने अपना सारा जीवन और परिवार वैदिक धर्म के लिए समर्पित किया। पं॰ जी का आर्यों के लिए एक अन्तिम पैगाम था "आर्य समाज से तहरीर और तकरीर का काम कभी बन्द नहीं होना चाहिए।"

मुझे अति प्रसन्नता हैं कि पं॰ लेखराम जी की बलिदान शताब्दी के अवसर पर हमारे प्रि॰ अश्विनी कुमार शर्मा जी ने पं॰ लेखराम जी के जीवन-चरित्र पर पुस्तक लिखी है। इस से जहाँ आर्य समाज में तहरीर का काम आगे बड़ा है वहाँ इस से पाठकों को भी प्रेरणा मिलेगी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल शर्मा जी ने इस पुस्तक को छपवा कर लेखराम के कार्य को आर्य जगत के सम्यक्ष रखा है। दोनों बधाई के पात्र हैं। पाठक इस पुस्तक से बहुत लाभ उठायंगे, ऐसी मेरी आशा है।

सर्वानन्द सरस्वती,
दयानन्द मठ,
दीना नगर।

विषय-सूची

१.	जन्म एवं बाल्यकाल	1 - 6
२.	पुलिस विभाग में कार्यरत	7 - 9
३.	मन उल्लू का पट्ठा है	10 - 11
४.	ब्रह्म समाजी बन गया	12 - 16
५.	अँग्रजो का सार्जेन्ट, दयानन्द का सिपाही	17 - 21
६.	आर्य मुसाफिर बन गए	22 - 24
७.	राजस्थान में धूम मचा दी	25 - 27
८.	पं॰ लेखराम और लक्ष्मी देवी का विवाह	28 - 32
९.	प्रचार कार्य और तेज़ हुआ	33 - 36
१०.	आर्य पथिक चलते रहे	37 - 40
११.	पं॰ लेखराम जी द्वारा लिखे ग्रन्थ	41 - 42
१२.	जीवन की प्रेरणादायक कुछ घटनाएं	43 - 58
१३.	अन्तिम बलिदान - आर्य पथिक सदा के पथिक	59 - 63
१४.	बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी	64 - 71
१५.	श्रद्धा सुमन	72 - 81
१६.	पं॰ जी की कुछ कृतियों का सार	82 - 92

वैदिक धर्म एवं आर्य जाति के रक्षक अमर शहीद पं० लेखराम जी

सर्वानन्द सरस्वती जी

पं० लेखराम जी का सारा जीवन वैदिक धर्म व आर्य जाति के लिए समर्पित था। पं० जी की एक ही धुन थी "केवल वैदिक धर्म का प्रचार।" वे वैदिक धर्म की पुष्टि के लिए व्याख्यान देते थे और शास्त्रार्थ करते थे। उन के व्याख्यानों से इस बात को विशेष बल मिलता था कि वैदिक धर्म ही मनुष्य का वास्तविक धर्म हैं। उन का जीवन तप, त्याग और कार्य कुशलताओं से परिपूर्ण था। महात्मा मुन्शी राम जी से मिलकर उन्होंने कई वर्षों तक वेद प्रचार किया।

पण्डित जी ने अपने जीवन में अनेक बार विधर्मियों से शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थ हेतू पं० जी एक बार कादियां के मौलाना के पास पहुंचे। उनके प्रश्नों का उत्तर न दे सकने और पं० जी से पराजित होने के कारण उन्होंने पं० जी को शहादत का जाम पिलाना ही अपने लिए बेहतर समझा। इस शास्त्रार्थ में मौलाना की बुरी तरह हार हुई और पं० जी सदा के लिए यशस्वी हुए। इस तरह पण्डित जी ने अपना सारा जीवन और परिवार वैदिक धर्म के लिए समर्पित किया। पं० जी का आर्यों के लिए एक अन्तिम पैगाम था "आर्य समाज से तहरीर और तकरीर का काम कभी बन्द नहीं होना चाहिए।"

मुझे अति प्रसन्नता हैं कि पं० लेखराम जी की बलिदान शताब्दी के अवसर पर हमारे प्रि० अश्विनी कुमार शर्मा जी ने पं० लेखराम जी के जीवन-चरित्र पर पुस्तक लिखी है। इस से जहाँ आर्य समाज में तहरीर का काम आगे बड़ा है वहाँ इस से पाठकों को भी प्रेरणा मिलेगी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल शर्मा जी ने इस पुस्तक को छपवा कर लेखराम के कार्य को आर्य जगत के सम्यक्ष रखा है। दोनों बधाई के पात्र हैं। पाठक इस पुस्तक से बहुत लाभ उठायंगे, ऐसी मेरी आशा है।

सर्वानन्द सरस्वती,
दयानन्द मठ,
दीना नगर।

विषय-सूची

१.	जन्म एवं बाल्यकाल	1 - 6
२.	पुलिस विभाग में कार्यरत	7 - 9
३.	मन उल्लू का पट्ठा है	10 - 11
४.	ब्रह्म समाजी बन गया	12 - 16
५.	अँग्रजो का सार्जेन्ट, दयानन्द का सिपाही	17 - 21
६.	आर्य मुसाफिर बन गए	22 - 24
७.	राजस्थान में धूम मचा दी	25 - 27
८.	पं॰ लेखराम और लक्ष्मी देवी का विवाह	28 - 32
९.	प्रचार कार्य और तेज़ हुआ	33 - 36
१०.	आर्य पथिक चलते रहे	37 - 40
११.	पं॰ लेखराम जी द्वारा लिखे ग्रन्थ	41 - 42
१२.	जीवन की प्रेरणादायक कुछ घटनाएं	43 - 58
१३.	अन्तिम बलिदान - आर्य पथिक सदा के पथिक	59 - 63
१४.	बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी	64 - 71
१५.	श्रद्धा सुमन	72 - 81
१६.	पं॰ जी की कुछ कृतियों का सार	82 - 92

अध्याय-१

जन्म एवं बाल्यकाल

१८५७ में भारतीय देश-भक्तों ने स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रथम युद्ध लड़ा। चाहे युद्ध में हार हुई, किन्तु इस समय के आस-पास अनेकों ऐसी विभूतियों ने जन्म लिया, जिन्होंने राष्ट्र-चरित्र को ऊँचा करते हुए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देश की आन, मान और शान को चार चाँद लगाए। उन में स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, श्यामलाल, लाला लाजपत राय, महात्मा हंसराज, पं॰ गुरुदत्त, लोकमान्य तिलक, स्वामी विवेकानन्द और पं॰ लेखराम के नाम उल्लेखनीय हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने वैदिक नाद से, प्रवचनों द्वारा, शास्त्रार्थ द्वारा स्थान-स्थान पर घूम कर कुम्भकरण की नींद में सोई हुई भारत-सन्तान को जगाया और अपने जीवन का बलिदान देकर वैदिक धर्म की रक्षा की। उनके निर्वाण के ७ वर्ष पश्चात १९ मार्च १८९० ई. को पं॰ गुरुदत्त विद्यार्थी ने तिल-तिल कर के अपने प्राणों की आहुति दी और उन के आत्म-बलिदान के ७ वर्ष पश्चात् पं॰ लेखराम ने ६ मार्च १८९७ (फाल्गुन शुकला ३ सं. १९५३ वि.)को अपना बलिदान देकर आर्य जाति को जागृत करते हुए अन्तिम सन्देश दिया, "आर्य समाज में तहरीर (लेखन) और तकरीर (व्याख्यान) का काम कभी बन्द न होना चाहिए।"

पं॰ लेखराम जी का जन्म ८ चैत्र संवत् १९१५ वि॰ तदनुसार १८५८ शुक्रवार को ब्राह्मण कुल में सैयदपुर नामक ग्राम में हुआ। इन के पिता जी का नाम महता तारासिंह और माता जी का नाम भागांभरी था। वह अपने माता पिता की ज्येष्ठ सन्तान थे। उन के दो छोटे भाई तोता राम और बालकराम थे और एक बहन थी जिस का नाम मायावन्ती था। लेखराम के पिता अति भाग्यशाली थे, जिन के घर में ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस ने अपने परिवार, वंश, ग्राम और जाति का नाम उज्ज्वल किया। छः वर्ष की आयु में उन्हें गाँव के स्कूल में पढ़ने भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने उर्दु एवं फारसी का ज्ञान प्राप्त किया।

पं॰ लेखराम जी के विषय में उनके अध्यापक मुन्शी तुलसीदास जी लिखते हैं कि लेखराम, तोता राम, बालक राम तीनों भाई उन से पढ़ते थे। लेख राम जी का कद दर्मियाना, रंग सांवला, कुशादा पेशानी, काली आँखे और चेहरा हँसमुख था। उस समय उनकी आयु १४ या १५ वर्ष की होगी, बड़े ही सरल हृदय थे।

मानसिक तौर पर बड़े बलवान थे, बुद्धि बहुत प्रखर थी, जो कुछ पूछो उन्हें सब याद होता था, किन्तु सरल स्वभाव इतने थे कि अपने कपड़ों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया करते थे। कुर्ते के बटन यदि खुले हैं, तो खुले रहें, उन्हें इसकी कोई चिन्ता न होती थी और पगड़ी का लड़ यदि खुल कर गले में पड़ जाए तो पड़ा रहे, उन्हें कोई चिन्ता न होती थी। बुद्धि इतनी प्रखर और स्मरण-शक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि कठिन से कठिन फारसी का पाठ उन्हें कभी दोहराना नहीं पड़ता था। कठिन से कठिन पाठ को ऐसे स्मरण कर लेते थे जैसे कोई निपुण-किश्ती-चालक बिना रोक टोक अपनी किश्ती को पानी में सुगमता से चलाता जाता है। उन के गुरु तुलसीदास जी के अनुसार लेखराम की बराबरी का एक भी अन्य विद्यार्थी पाठशाला में नहीं था। १६ फरवरी सं० १८७३ ई० को लेख राम कक्षा के मानीटर और अपने सह-पाठियों के अग्रणी नेता बन गए। महता गोपीनाथ जो सैयदपुर गाँव में पं० लेखराम जी के साथ ही पढ़ते थे और बाद में थानेदार बने, उन के कथनानुसार पं० लेखराम अपनी श्रेणी में सदा प्रथम रहते थे और इतने कुशाग्र-बुद्धि और निर्भीक थे, कि अर्थ करने में कई बार अपने गुरु तुलसीदास जी को भी मात दे दिया करते थे।

एक बार फारसी पढ़ाते हुए मुन्शी जी ने यह पद्य पढ़ाया :

"राहे काबल खतरनाक अस्त,

आनांकि मेरबन्द सर बकफ मेरबन्द।"

मुन्शी जी ने अर्थ किए, "काबल का मार्ग खतरनाक है, जो यात्री जाते हैं हाथ की हथेली टेक कर जाते हैं।" यह सुनकर लेखराम चौंके और कहने लगे कि यह अर्थ नहीं अनर्थ है और अध्यापक को ठीक करवाया, "काबल का मार्ग खतरनाक है, जो यात्री जाते हैं वे सिर हथेली पर रख कर जाते हैं।" मुन्शी जी बालक की बुद्धि पर चकित रह गए।

इन्हीं दिनों लेखराम को कविता लिखने का भूत सवार हो गया और उन्होंने शेरो-शायरी में अपना समय लगाना प्रारम्भ किया। उर्दु, फारसी के अतिरिक्त वे पंजाबी भाषा में भी तुक-बन्दी करने लगे। मुन्शी तुलसीदास जी लिखते हैं :-

"मुन्शी लेखराम मानीटर साहिब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या जिक्र।"

इस समय में सदाचार से सम्बन्धित हुक्का-पीने के विरुद्ध निम्नलिखित तुकबन्दी

की है :-

वे बाङ्ग-हुक्क नहीं चीज़ भैड़ा
लख बदियांदा इबदता हुक्का ।
खङ्ग गर्मी ने सौदासाह
चारों रोग कर बरपा हुक्का
जूठा चक्खना चंगयां मन्दयां दा
कोई फायदा चादसाला हुक्का ।
शूम धूम वाङ्गण चिलमकश जित्थे
बैठ करे ताजा जिस दा हुक्का ।
गहर बाङ्ग स्याही स्याह करे
स्याही यही मुंहदे उत्तेमले हुक्का ।
बू बदतर है बांग बौले थी भी
बोल बोल छड्डे सीना खा हुक्का ।
नेकमाश नू हुक्का बदनाम करदा
बाब नेकदे बुरा कमा हुक्का।
एह ऐब मैने दित्ते गिन सारे
कोई फायदा नहीं बस बसाय हुक्का ।
लेखराम बस बैठके नाम जपलो
नड़ी भन्न के देओ उड़ाय हुक्का ।

बचपन में लिखी हुई इस कविता से एक बात स्पष्ट होती है कि भावी लेखराम सामाजिक कुरितियों से जूझने के लिए अपने भावी कार्य-क्रम की भूमिका बाँध रहा है । आने वाले जीवन में लेखराम ने प्रत्येक सामाजिक कुरीति के विरोध में अपनी कलम और आवाज़ उठाई । इस कविता में उन्होनें कहा कि हुक्के को तोड़-फोड़ दो और प्रभु सिमरण करो । लेखराम जी के बचपन के लेखों के कुछ अंश ऐसे हैं:-

१) बाबा फकीरी दूर है जितनी लम्बी खजूर है ।
चढ़े तो चूसे प्रेम रस गिरे तो चकना चूर है ।।

२) लिखूँ पहले हम दे खुदाय जहाँ
कि जिसने किया पैदा अरजो समां ।।

विद्यार्थी-जीवन से ही लेखराम दृढ़ विश्वासी एवं धुन के धनी थे । स्वामी स्वतन्त्रानंद जी के अनुसार जब वे स्कूल में पढ़ते थे, तो मौलवी जी से पानी पीने की छुट्टी मांगी । घड़े का पानी भ्रष्ट था । मौलवी ने कहा, "छुट्टी नहीं मिलेगी । पानी पीना हो तो यहीं पी लो ।" इस स्वाभिमानी बच्चे ने न तो पुनः छुट्टी के लिये प्रार्थना की और न ही भ्रष्ट घड़े का पानी पिया । सारा दिन प्यासे व्यतीत कर दिया। तब कौन कह सकता था कि यह बालक बड़ा होकर आर्य मुसाफिर कहलाएगा, भूखा, प्यासा रह कर यातनाएं सहन कर ऋषि दयानंद के जीवन की घटनाएं एकत्रित करेगा और वैदिक धर्म के प्रचारार्थ अपने प्राणों तक की बलि दे देगा ।

'होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात ।'

भारतीयता, भारतीय संस्कृति और भारत के इतिहास पर इतना गर्व और विश्वास था कि नौजवान बालक ने मिडिल की इतिहास की परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर पाठ्यक्रम में छपी पुस्तकानुसार देने के स्थान पर मिथ्या धारणाओं का खण्डन लिख कर पेपर दे दिया । आर्य लोग कहीं बाहर से नहीं आए, न ही ईरान से आए। वे भारत के ही रहने वाले थे । हमारे देश का वास्तविक नाम हिन्दोस्तान नहीं अपितु 'आर्यावर्त्त-देश' है । ऐसा लिखने का परिणाम यह हुआ कि लेखराम जी बाकी सब विषयों में पास, किन्तु इतिहास विषय में फेल घोषित हुए, किन्तु भावी आर्यपथ का पथिक कब घबराने वाला था, अपनी विचार-धारा पर अटल रहे और टस से मस न हुए । मिडल की परीक्षा में वे इतिहास विषय में फेल हो गये, किन्तु जीवन की प्रत्येक परीक्षा में वे उत्तीर्ण रहे ।

लेखराम का वंश :-जननी और जन्म भूमि दोनों के संस्कार सन्तान पर पड़ते हैं, जैसे गर्भ में पल रहे बच्चे पर माता के गुण, कर्म, स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं, वैसे ही जन्म-भूमि की जल, वायु और प्रकृति के दृश्यों का प्रभाव वहाँ पर पलने वाली पीढ़ी पर होता है :-

'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

इसी लिए जननी और जन्म-भूमि को स्वर्ग से भी बड़ा बताया गया है । लेखराम का जन्म-स्थान सैयदपुर ग्राम प्रकृति की गोद में बसा हुआ एक छोटा सा ग्राम था। जिस के तीनों ओर बरसाती नदियाँ बहती थी । पूर्व में बहने वाली नदी

को काशी कहते हैं और इस के पास रामहलावां पहाड़ी है, जहाँ हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान कटासराज है । दूसरी नदी का नाम सुर है, जिसे लेखराम जी सरस्वती कहा करते थे । इस का पानी सैयदपुर के दूसरे दोनों ओर से बहता हुआ काशी नदी में जा गिरता है । ग्राम के दक्षिणी-पूर्वी भाग में सुन्दर पहाड़ियों की गिरिमाला है, जो अति रमणीय एवं सुन्दर है ।

पं॰ लेखराम जी के पूर्वज पोठोहार से आकर सैयदपुर ग्राम में बसे हुए थे । इन के दादा महता नारायणसिंह जी पोठोहार छोड़ कर अपने ससुराल 'सैयदपुर' में आ कर बस गए थे।

नारायण सिंह बड़े प्रतापी, अड़ियल, वीर ब्राह्मण थे। वे हाकिम सरदार कान्ह सिंह मजीठिया के घुड़सवारों में नौकरी करते थे और बड़े जाँबाज़ एवं दृढ़ महा-मानव थे। उनकी काया विशाल और बदन गठीला था, हाथ पैर खुले थे। उन की बहादुरी पर प्रसन्न होकर कान्ह सिंह उन को अपने साथ भोजन करवाते थे। एक बार पठानों के साथ युद्ध में वे कान्ह सिंह के साथ युद्ध में खड़े हुए और बन्दूक की गोली मुँह में लगकर, कान को चीरती हुए गले से बाहर निकल गई, किन्तु वे बहादुरी से लड़ते रहे। कान्ह सिंह ने उनकी वीरता पर प्रसन्न होकर दो जोड़ी सोने के कड़े देकर उन्हें सम्मानित किया। वे एक उत्तम घुड़सवार, पक्के निशानेबाज़ और सच्चे मित्र थे। उन की कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था। वे अक्खड़ (हठीले) व्यक्तित्व के स्वामी थे। अँग्रेजी शासन के समय अँग्रेजों ने प्रजा को हुक्म दिया कि सभी अपने-अपने हथियार सरकारी तोपखाने में जमा करवा दें । पं॰ नारायण सिंह ने, जिन को लोग प्रेम से परशुराम भी कह दिया करते थे, हथियार जमा करवाने को अपना अपमान समझा और कश्मीर राज्य के पुंच्छ सैक्टर में जा कर हथियार बेच दिए किन्तु अँग्रेजों को नहीं दिए। इनकी मृत्यु संवत् १९२५ में सैय्यदपुर में हुई ।

नारायणसिंह के दो पुत्र थे। बड़े का नाम तारासिंह और छोटे का नाम गंगाराम था । लेखराम अपने पिता श्री तारासिंह की ज्येष्ठ संतान थे । महता नारायणसिंह के छोटे भाई श्याम सिंह थे । वे बाल ब्रह्मचारी रहे और साधु बन कर विचरते रहे तथा इन का देहावसान संवत् १९२८ वि॰ को हुआ । इस में सन्देह नहीं कि पं॰ लेखराम के भावी जीवन पर अपने कुल के दोनों दादाओं के व्यक्तित्व का प्रभाव था । पं॰ लेखराम जी एक ओर अपने दादा नारायणसिंह की भांति धीर, वीर,

निडर और अक्खड़ व्यक्तित्व के स्वामी थे, तथा दूसरी ओर दादा श्यामसिंह की भांति सरल एवं साधु-स्वभाव थे, जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार हेतु अपने जीवन की सब खुशियाँ न्योछावर कर दी। पुत्र-शोक से अधिक शोक उन्हें इस बात का था कि विधर्मियों के हाथों हमारे आर्य भाईयों का कोई धर्म-परिवर्तन न करे। शुद्धि के बहाने आया हुआ हत्यारा उन्हें छुरा मार कर सदा की नींद सुला गया।

छः वर्ष कि आयु में बालक लेखराम को गाँव सैय्यदपुर के स्कूल में उर्दु-फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। उन दिनों मदरसों में उर्दु-फारसी की ही पढ़ाई चलती थी, यही राज्य-भाषा थी। देव नागरी अक्षरों का किञ्चित्-मात्र भी प्रचार-प्रसार न था, फिर भी बालक लेखराम के मन में भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। अभी वे ग्राम के ही स्कूल के छात्र थे कि शिक्षा -विभाग की ओर से स्कूल का निरीक्षण करने हेतु एक निरीक्षक आए और बालक लेखराम की स्मरण-शक्ति एवं हाजिर-जवाबी पर प्रसन्न होकर उन्हें विशेष पारितोषिक दिया। लेखराम स्कूल का सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी घोषित हुआ।

पेशावर में :- जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उनके चाचा गण्डा राम पेशावर पुलिस में कार्यरत थे। उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। लेखराम जी पेशावर में तीन वर्ष तक रहे और इस समय में कई मौलवी अध्यापकों से उनके पठन-पाठन का कार्य चलता रहा। क्योंकि पढ़ाने वाले मौलवी लोग हुआ करते थे, इसलिए बालक लेखराम पर वे अपने विचार थोपना के प्रयत्न करते रहते थे, किन्तु लेखराम उनके जाल में फँसने वाला युवक नहीं था। वह ऐसे ऐसे प्रत्युत्तर किया करता था कि मौलवी लोग पढ़ाना छोड़कर भाग जाया करते थे। चाहे इस तरह के शिक्षकों के सम्पर्क में आकर बालक लेखराम को शारीरिक, धार्मिक एवं मानसिक शिक्षा का अभाव रहा किन्तु प्रकृति की गोद में जन्मे और पले लेखराम का गठीला शरीर, विशाल छाती, चौड़ा माथा और सिंह ध्वनि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि उन के व्यक्त्वि का बहुमुखी विकास हो चुका था।

लेखराम बदन के गठीले और मन के हठीले थे। जिस बात को एक बार ठान लेते थे, उस को पूर्ण कर के ही छोड़ते थे। पेशावर में रहते हुए एक बार इन की चाची गणेष देवी जो इन की मौसी भी थी, उन्होंने एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखा। बालक ने भी एकादशी का व्रत रखने का हठ किया। चाची ने बुहत समझाया किन्तु लेखराम टस से मस न हुए और अपने शिव संकल्प को पूरा किया और अपनी चाची के साथ नियम-पूर्वक एकादशी का व्रत करते रहे। बचपन से ही ऐसे प्रबल संस्कार जिस के हों, वे जीवन में विचलित नहीं हो सकता।

अध्याय-२

पुलिस विभाग में कार्यरत

उस समय में सैय्यदपुर गाँव एवं पं० लेखराम के परिवार-जनों में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने की लग्न आरंम्भ नहीं हुई थी। इन के दादा नारायणसिंह एक उच्च-कोटि के घुड़सवार, वीर एवं साहसी योद्धा थे, किन्तु सर्वथा अशिक्षित थे। इन के चाचा गण्डाराम जी को उर्दु एवं फारसी दोनों भाषाओं का व्यवहारिक ज्ञान था। उन्हों ने वैसा ही ज्ञान ३ वर्ष पेशावर में रहते हुए अपने भतीजे को दिलवाने का प्रयास किया। समय की पुकार थी कि १६-१७ वर्ष का नव-युवक अपने पाँव पर खड़ा हो और अपनी घर-गृहस्थी सम्भाल ले। लेखराम ने अभी १६ वर्ष की आयु पूरी ही की थी, कि इन के चाचा जी ने इन्हें १७ वर्ष की आयु में २१ दिसम्बर १८७५ ई. में पेशावर पुलिस में भर्ती करवा दिया। उस समय कृस्टी साहिब जिला पुलिस के मुखी थे, जिन को कह कर चाचा गण्डाराम जी ने लेखराम को भर्ती करवाया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते है -

"कैसी विचित्र घटना है कि जिस कृस्टी साहब ने लेखराम को पुलिस में भर्ती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी"

जब श्रद्धानन्द जी महाराज कृस्टी महोदय से मिले तो उन्हों ने इस तरह अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए, "मुझे ज्ञात था कि लेखराम अपनी निर्भीकता व स्पष्टता के कारण कभी न कभी मारा जाएगा। उसकी दृढ़ता के लिए मेरे हृदय में सदा मान का भाव रहा करता था।"

सत्य की खोज में :- पं० लेखराम ने पुलिस की नौकरी तो कर ली, किन्तु उस का मन तो कहीं और ही था। प्रारम्भ में नक्शा नवीसी का काम मिला और धीरे-धीरे सार्जेण्ट पद तक पहुँच गए। उन का तन तो पुलिस की नौकरी में था किन्तु मन सत्य की खोज के लिए बेचैन था , परम पिता परमात्मा को पाने के लिए सत्य-मार्ग की खोज में भटक रहा था। ईश्वर भक्ति एवं समाधिस्थ होने के अंकुर तो मन में तभी से फूट चुके थे, जब अभी आप चाचा के साथ 'सुआबी' में थे। वहाँ एक प्रभु-भक्त सिख सिपाही की संगति में उन्हें परम पिता परमात्मा का नाम

जपने का अभ्यास हो चुका था। वे पुलिस की सार्जेण्टी करते समय ईश्वर की निरन्तर उपासना करते रहे और 'गीता' का विवेक-पूर्वक स्वाध्याय करते रहे। परिणाम यह हुआ कि कृष्ण-भक्ति में आप की श्रद्धा बढ़ती गई उन्होने माथे पर टीका लगाना और कृष्ण कृष्ण जपना प्रारम्भ कर दिया। कृष्ण-रास-लीला में भी डट कर भाग लेने लगे। ऐसी अवस्था कुछ समय बनी रही।

वैराग्य तो इन्हें दादा श्यामसिंह से विरासत में ही मिला था। श्याम सिंह जी सन्यासी बन गए थे। धीरे धीरे प्रभु-भक्ति का शिव-संकल्प दृढ़ होता गया और पाँच साल की सार्जेण्टी से अस्तीफा देने की इच्छा प्रबल होती गई।

जब आप 'सुआबी' में अपने चाचा जी के साथ रहते थे, उस समय की एक घटना उल्लेखनीय है। इन के चाचा गण्डाराम जी लिखते हैं-

"प्रात: काल ब्रह्ममुहूर्त में ही स्नान कर के समाधि लगा कर बैठ जाते और दिन को गुरुमुखी अक्षरों में लिखी गीता का पाठ करते। एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाए बैठे थे, कि सब के देखते-देखते खटिया से नीचे आ गिरे। सिर नीचे और पाँव खटिया के उपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वे अपने ध्यान में मस्त रहे।"

ऐसे बचपन से ही योग-साधकों को नौकरी कैसे बाँध सकती थी। पर साधना चलती रही और अद्वैत-मत की ओर आकर्षित हुए। गीता का निरन्तर पाठ करने से कृष्ण-भक्ति इतनी जागृत हुई कि माथे पर टीका लगा कर 'कृष्णा कृष्णा' का जाप करते-करते ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ कि नौकरी छोड़ कर वृदांवन जाने के लिए तैयार हो गए। इस समय इन की आयु२१ वर्ष की थी। उन्होंने अपने गाँव के अध्यापक तुलसीदास जी को मन की व्यथा सुनाई कि वे संस्कृत पढ़ने के लिए देशान्तर जाना चाहते हैं। वैराग्य उन के मन में घर कर चुका था। माता पिता ने उनको विवाह के बन्धन में जकड़ने की ठानी, किन्तु लेखराम ने इस मोह-पाश में बँधने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। चाचा गण्डाराम जी ने स्वयं अपने लाडले भतीजे को बहुत समझाया, किन्तु लेखराम के लेख न्यारे देख कर जिस कन्या का विवाह लेखराम से करना चाहते थे, उस का विवाह लेखराम के छोटे भाई तोता राम के साथ कर दिया।

आप अद्वैत-वाद, कृष्ण-भक्ति, मुहम्मदी-मत की पुस्तकें, मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों इत्यादि का अध्ययन किया करते थे, और सत्यमार्ग की

खोज कर रहे थे। एक सुन्दर घटना इन के परम मित्र महता कृपाराम जी ने लिखी है, जो यहाँ वर्णन-करने योग्य है। कृपाराम जी ने लेखराम से पूछा कि आप मुहम्मदी मत की पुस्तकों का बड़ा गहन अध्ययन करते हैं, यदि यह मत आप को अच्छा लगे तो क्या आप मुसलमान बन जाएंगे। हाज़र-जवाब पं॰ लेखराम जी ने तुरन्त उत्तर दिया -

"बेशक। अगर दस घड़े रखे हों और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा थोड़ा पानी सब से न पिया जाए, तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है।"

ठीक इसी प्रकार जब तक सब मतों की धार्मिक पुस्तकों का रस चखा न जाए, उन को भली प्रकार पढ़कर उनकी समीक्षा न की जाए तब तक उन की वास्तविकता एवं सत्यता का पता नहीं चलता। कई मौलवी लोगों की यह धारणा थी कि चाहे पं॰ लेखराम आर्य समाजी हैं और वैदिक-धर्म के सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं, किन्तु मुसलमान मौलवियों से कहीं अधिक पं॰ लेखराम जी ने कुरानशरीफ की आयतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया हुआ है। उन के भाषण सुनते समय कई मुसलमान विद्वान और मौलवी, 'सुबान अल्लाह' कहते सुनाई देते और कईयों की टोपियां एवं दाड़ियाँ हिलती हुई दिखाई देती थीं।

अध्याय-३

मन उल्लू का पट्ठा है

महाभारत में पांडव वनवास के समय द्वैतवन में पहुँचते हैं । पिपासातुर युधिष्ठर पारी पारी अपने सभी भाईयों को पानी की खोज के लिए भेजते हैं । यज्ञ सरोवर का स्वामी यक्ष-नकुल, सहदेव, भीम, अर्जुन को बारी बारी कहता है कि पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तत्पश्चात् पानी पीना । यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना पानी पिओगे तो मर जाओगे । प्यास से-व्याकुल चारों भाई यक्ष की चेतावनी की कोई परवाह नहीं करते और मूर्छित हो जाते हैं । अन्त में युधिष्ठिर वहाँ पहुँचते हैं और पानी न पीकर यक्ष के सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं । उन प्रश्नों में एक प्रश्न है कि वायु से भी तीव्र चलने वाली कौन सी वस्तु है ? युधिष्ठिर उत्तर देता है - 'मन वायु से भी शीघ्रगामी है' ।

यक्ष -- किं स्विद् गुरुतरं भूमेः किं स्विदुच्चतरं च खात् ।
किं स्विच्छीघ्रतरं वायोः कि स्विद् बहुतरं तृणाते् ।।
(महाभारत अध्याय २४, श्लोक २६)

भाव - भूमि से भी भारी क्या है ? आकाश से भी ऊँचा क्या है ? वायु से भी शीघ्र गामी क्या है और तिनके से भी असीम तथा असख्य क्या है ?

युधिष्ठिर का उत्तर - माता गुरूतरा भूमेः पिता चोच्चतरश्च खात् ।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ।।

भाव - माता पृथ्वी से भी बड़ी एवं भारी है । पिता आकाश से भी ऊँचा है। मन वायु से भी अधिक शीघ्रगामी है और चिन्ता तिनके से भी विस्तृत है ।

यह मन बड़ा चंचल है । एक स्थान पर टिकता ही नहीं । रामचन्द्र जी महाराज भी अपने गुरु वशिष्ठ जी महाराज से इसी मन की चंचलता का रोना रोते हैं, कि मन टिकता नहीं और गुरु जी ने उपदेश दिया कि मन को मन से ही लगाओ, मन को सुमन बनाओ । हमारे पं. लेखराम जी अपने शिष्यों को समझाने के लिए कहा करते थे कि मन बड़ा 'उल्लु का पट्ठा है'। यह इधर उधर अधिक घूमता है, संध्या, भजन और जाप में कम लगता है । मन की चंचलता तब तक दूर

नहीं होती जब तक मन में दृढ़ संकल्प और शिव संकल्प नहीं होते । इसीलिए वेदों में ईश्वर कृपा की प्रार्थना करते हुए भक्त की पुकार है, कि हे प्रभु ! मेरा मन शिव संकल्प वाला हो:-

युज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।१

भाव - हे प्रभो ! मेरा दिव्य शक्ति वाला जो मन जागते हुए अथवा सोते हुए दूर दूर तक चला जाता है, अर्थात् भटकता रहता है । वह मन सभी ज्ञान-वर्धक इन्द्रियों का प्रधान ज्योति प्रकाशक है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे ।

पं. लेखराम जी ने तो इस मन को वश में करने का उपाय बचपन के दिनों से ही प्रारम्भ कर दिया था । 'सुआबी' में रहते ही इन्होंने समाधिस्थ होना सीख लिया था, किन्तु मन अभी एक जगह टिका नहीं था, डाँवाडोल था। गीता पढ़ी तो कृष्ण-भक्त हो गए और कृष्ण-कृष्ण का जाप करने लगे, माथे पर टीका लगाने लगे और कृष्ण रास-लीला में तल्लीन हो गए । कुरानशरीफ और मुहम्मदियों के अन्य ग्रन्थ पढ़े तो उन में मग्न हो गये । अद्वैतवाद के सम्पर्क में आए तो अहं ब्रह्माऽस्मि' करने लगे । सब कुछ ब्रह्म ही है । उन का हृदय अभी 'खाना बदोश' था । सत्य की खोज थी और रास्ते में जो कुछ मिलता उसकी समीक्षा करने में तत्पर हो जाते। उन की प्रवृत्ति अभी तक सार्वभौमिक थी और वह ठंडे मीठे अमृतमय पानी की तलाश में हर घड़े के पानी का रसा-स्वादन करते थे । जब तक अमृतरस पान न हुआ , तब तक सभी प्रकार की धार्मिक पुस्तकें पढ़कर समीक्षा करते रहे ।

अध्याय - ४

ब्रह्म-समाजी आर्य समाजी बन गया

पं. लेखराम में प्रभु-भक्ति की पहली चिंगारी एक सिक्ख सिपाही की सत्संगति में भड़की। वह ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर स्नान कर के गुरुमुखी में लिखी गीता का पाठ करते, तत्पश्चात् समाधि लगाते। कृष्ण का जाप भी करते, मुस्लिम-मत की ओर भी आकर्षित हुए और अद्वैतवाद के भी निकट आए। किन्तु उनके 'खाना बदोश' मन को तब तक शान्ति न मिली जब तक वह आर्य-समाज की शरण में नहीं आए।

वैदिक द्वार खुल गए- पं. लेखराम की कुशाग्र बुद्धि को यह विश्वास नहीं होता था कि कर्त्ता और कर्म दोनों ब्रह्म हैं, जीव और जीवात्मा दोनों ब्रह्म हैं। यह उन्हें भ्रान्ति-मय लगने लगा। इन्हीं दिनों पं॰ लेखराम जी काशी से प्राप्त एक गीता-भाष्य पढ़ रहे थे और उस भाष्य को पढ़ते पढ़ते उनके मन में मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी का सहित्य पढ़ने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। मुन्शी अलखधारी की पुस्तकें पढ़कर पं॰ लेखराम जी को महर्षि दयानन्द के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते है कि "मुंन्शी कन्हैया लाल अलखधारी ने वैदिक धर्म के पुनरुत्थान में वही काम किया, जो ईसाई मत की स्थापना के लिए जाँन दी बैपटिस्ट ने किया। यदि चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए जाँन दी बैपटिस्ट की आवश्यकता थी, तो आर्य समाज को ऋषि दयानन्द का उद्देश्य समझाने के लिए अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की आवश्यकता थी।"

उस समय के पंजाबी और नव-शिक्षित लोग अलखधारी को अपना 'पैगम्बर' एवं 'रहबर' समझते थे। बाबू अलख धारी के लेखों ने उस समय की कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों पर करारी चोटें की और आडम्बरों की सांकलों को तोड़ने में बिजली का काम किया। मुन्शी अलखधारी ने महर्षि दयानन्द के व्याख्यानों, भाष्यों एवं मन्तव्यों को एक स्पष्ट और ज़ोरदार भाषा में लोगों के सामने रखा। जैसे मार्टन लूथर ने पादरियों की पोप-लीला को फटकार कर लोगों में नई चेतना उत्पन्न कर के योरुप के समाज को अन्ध-विश्वास से मुक्त किया था, वही काम

महर्षि दयानन्द अपने वैदिक नाद से भारत-वर्ष में कर रहे थे। मुन्शी अलखधारी की पुस्तकें पढ़ कर पं० लेखराम को महर्षि दयानन्द के नाम और काम का दिग्दर्शन हुआ। उन्होंने दयानन्द के वैदिक-मत अनुसार अद्वैत-मत की पुनः समीक्षा की और इसे खोखला पाया। दयानन्द को चतुरसिंह नामक एक व्यक्ति जो अद्वैतमत का प्रशंसक था, ने कहा, "महाराज सब कुछ ब्रह्म ही है, मैं भी ब्रह्म हूँ, आप भी ब्रह्म हैं।" दयानन्द जी ने एक दम एक थप्पड़ चतुरसिंह की गाल पर दे मारा। चतुरसिंह को बड़ा कष्ट हुआ और कहने लगा, "महाराज यह क्या किया? आप ने मुझे थप्पड़ क्यों मारा ?" ऋषि दयानन्द ने उसे ठीक मार्ग पर लाने की प्रेरणा करते हुए कहा, "किस ने किस को मारा ? जब मैं भी ब्रह्म हूँ, तुम भी ब्रह्म हो, तो मैनें तुम्हे कैसे मारा ?" ऐसा सुनते ही चतुरसिंह ऋषि दयानन्द के चरणों में गिर पड़ा और उन का भक्त हो गया।

पं० लेखराम ने अलखधारी जी की पुस्तकें पढ़ कर और दयानन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करके अद्वैतमत को तिलाँजली दे दी, उस का भ्रम दूर हो गया और उसे ज्ञान हो गया कि वह ब्रह्म नहीं, जीवात्मा है। पं० लेखराम जी ने एक अद्वैतवादी सन्त दामोदर दास वेदान्ती से पुस्तक ली और जब उसने पुस्तक वापिस मांगी तो यह कह कर पुस्तक नही लौटाई कि मैं और पुस्तक दोनों ब्रह्म हैं, आप भी ब्रह्म हैं, मैं भी ब्रह्म हूँ तो फिर पुस्तक में, मेरे में और तुम्हारे में कुछ अन्तर नहीं। यह कह कर पं० जी ने पुस्तक न लौटाई और आर्य समाज पेशावर की लायब्रेरी में रख दी।

अब पं० लेखराम जी के संशय दूर हो चुके थे, हृदय की ग्रन्थियाँ खुल चुकी थीं और उन पर आर्य समाज का रंग चढ़ चुका था। संवत् १९३७ वि० के अन्त में पेशावर में आर्य समाज की स्थापना पं० लेखराम जी के हाथों हुई। मुन्शी अलखधारी के अनेकों श्रद्धालु एवं प्रशंसक आर्य समाज के सदस्य बने।

पं० जी पेशावर में भाई रंजी की धर्म-शाला में रहते थे और वहाँ पर ही आर्य समाज के सत्संग होते थे। पं० जी पाँच मित्र थे और पांचों ही पहले ब्रह्म विश्वासी थे। पं० जी के उपदेश देने से चार मित्र तो शीघ्र ही आर्य समाजी बन गए, किन्तु पांचवा अभी ब्रह्म ही बना था। उस को आर्य समाजी बनाने की घटना बड़ी रोचक है। एक दिन पं० लेखराम भी उस को कहने लगे, "कम्बख्त तेरी समझ में कुछ नहीं आता। हमारी खातिर ही आर्य समाजी बन जा। मित्र मण्डली तो न टूटेगी।" यह तीर निशाने पर फिट बैठा और पांचवा मित्र भी आर्य समाजी बन गया

। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते हैं -

"पांच पंच मिल कीने काज ।

हारे जीते न आवे लाज ।।"

धर्मवीर पं॰ लेखराम जी को उस समय लेखु कहते थे । भाई रंजी की धर्मशाला में आर्य समाज की स्थापना तो हो गई । ऊपर वर्णित पांचों मित्र आपस में बैठ कर धार्मिक वार्तालाप करते थे, न कोई नोटिस लगाया जाता था, न कोई डिंढोरा पिटवाया जाता था । सब को इकट्ठा करना लेखु का काम था । धीरे-धीरे पांचों मित्रों ने मिल कर अपने आप को ब्रह्म कहना बन्द किया और उस पारब्रह्म की शरण में उसके अमृत-पुत्र बन कर आ गए ।

पं॰ लेखराम जी पक्के एवं दृढ़ संकल्पी आर्य समाजी तो बन गए, मुन्शी अलखधारी की पुस्तकों का भी खूब अध्ययन किया, महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ भी पढ़े, किन्तु संस्कृत का गहन अध्ययन न होने के कारण शंका निवारण करते समय कई बार विचलित हो जाया करते थे । वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबलता से उत्तर देते एवं मण्डन करते थे, किन्तु अपने नये वेदान्ती मित्रों से वार्तालाप करते हुए कई बार निरुत्तर हो जाया करते थे । उन्हों ने आत्म-निरीक्षण कर के यह भांप लिया कि वे चिंतक तो बन गए है, किन्तु अभी प्रचारक बनना शेष था । स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज पं॰ जी की इस स्थिति के बारे में वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पं॰ लेखराम भी अभी तक सुन्नी आर्य समाजी थे । कहावत है कि मुसलमानी मत सब रास्ते साफ करता हुआ, लोगों को शमशीर के ज़ोर पर मुसलमान बनाता हुआ जब अटक नदी के किनारे पहुँचा तो गुरु नानकदेव जी महाराज ने कहा, 'अब तो अटक' । गुरु महाराज के इस आदेश से मुसलमान मत अटक के उस पार अटक गया । जो लोग अटक नदी तक के थे, वे मुसलमान कहलाए । वहाँ से मुसलमान भाईयों ने बाङ्ग देनी शुरु कर दी और अटक नदी के दूसरी ओर के लोग बाङ्ग सुन कर सुन्नी कहलाए ।

इसी प्रकार पं॰ लेखराम जी इस समय तक आर्य समाज के विषय में 'सुन सुना' कर 'सुन्नी' आर्य समाजी ही बन पाये थे । उन्हों ने मन में शिव संकल्प किया कि जब तक आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के साक्षात दर्शन कर के संशय निवृत्ति न कर ली जाए तब तक मानसिक पिपासा बुझ नहीं सकती । ऐसा निश्चय कर के उन्होनें सरकारी नौकरी करते हुए अपने 4½ वर्ष के कार्य-काल में

पहली बार एक महीने की छुट्टी ली और ११ मई १८८१ को पेशावर से अजमेर की ओर चल पड़े। मार्ग में लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि प्रसिद्ध आर्य समाजों में ठहरते हुए १६ मई को अजमेर पहुँचे और १७ मई को सेठ फतेहमल की वाटिका में जा कर ऋषि दयानन्द के प्रथम एवं अन्तिम दर्शन किये। मुन्शी राम पर ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व एवं विचारों का ऐसा जादू हुआ जिससे वह मुन्शी राम से श्रद्धानन्द बन गए, गुरुदत्त पर हुआ तो वे चलती फिरती आर्य समाज बन गऐ। पं॰ लेखराम पर ऐसा अलौकिक प्रभाव पड़ा कि वे 'आर्य मुसाफिर' बन गए। जो हृदय ज्योति दयानन्द के चरणों में एक बार प्रज्वलित हुई वह जीवन-प्रर्यन्त देदीप्यमान रही। उन की अजमेर यात्रा ऐसी सफल हुई कि जीवन यात्रा भी सफल हो गई। सब यात्रा के कष्ट भूल गए और हृदय के संशय दूर हो गए।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः

छिद्यन्ते सर्व संशयाः। (मुण्डकोपनिषद्)।

महर्षि दयानन्द एवं पं. लेखराम का मिलाप-

पं॰ लेखराम जी ने महर्षि दयानन्द के साथ समागम का हाल अपने ही शब्दों में इस प्रकार लिखा है -

११ मई सन् १८८१ ई॰ को संवाददाता पेशावर से स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त चल कर १६ की रात को अजमेर पहुँचा और स्टेशन के समीप वाली सराय में डेरा किया और १७ मई को प्रातः काल सेठ जी के बगीचे में जा कर स्वामी जी के दर्शन किए। उन के दर्शन से मार्ग के सभी कष्ट विस्मृत हो गए और उस के सत्योपदेशों से सर्व संशय निवृत्त हो गए। जयपुर में मुझ से एक बंगाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है। दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकठे रह सकते हैं। मुझ से इस का कुछ उत्तर नहीं बन पाया था। मैनें यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठा कर कहा, "इस में अग्नि व्यापक है कि नही ?" मैनें कहा कि व्यापक है। फिर पूछा, मिट्टी ? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा - परमात्मा ? मैंने कहा कि वह भी व्यापक हैं। तब कहा, "देखा। कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इस में व्यापक हैं। असल बात यह कि जो वस्तु जिस से सूक्ष्म होती है, वही उसमें व्यापक हो सकती हैं। ब्रह्म यतः सब से सूक्ष्म है अतः सर्व-व्यापक है।" इस से मेरी शान्ति हो गई।

मुझे उन्होनें आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हो उनको निवारण कर लूँ। मैने

बहुत सोच समझ कर दस प्रश्न लिखे, जिन में से तीन प्रश्न मुझे याद हैं, शेष सब भूल गए।

प्रश्न - जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई प्रमाण बतलाइए।

उत्तर - यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय सारा जीव और ब्रह्म का भेद बतलाता है।

प्रश्न - अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नही ?

उत्तर - अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न - बिजली क्या वस्तु है और कैसे पैदा होती है ?

उत्तर - विद्युत् सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

अन्त में मुझे उपदेश दिया कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना।

महर्षि दयानन्द के प्रवचनों से जहाँ पं० लेखराम जी निहाल हो गए, वहाँ एक होनहार शिष्य एवं जिज्ञासु को पाकर ऋषि दयानन्द भी अति प्रसन्न हुए और आशीर्वाद के रूप में अष्टाध्मयी की एक प्रति पं० लेखराम को प्रदान की। दयानन्द के व्याख्यानों से सैंकड़ों लोग लाभ उठाने आते थे और शंका सामाधान करवा कर प्रसन्नता-पूर्वक लौट जाया करते थे। पं० जी २४ मई तक अजमेर में रहें कि ऋषि दयानन्द से अन्तिम विदा ली। गुरु और शिष्य का पुनः मिलन न हो सका।

ऋषि दयानन्द के इस थोड़े से सत्संग ने लेखराम की काया पलट दी और वे दृढ़ संकल्पी, पक्के आर्य समाजी बन गए। वैद्धिक धर्म में उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ हो गया। अजमेर से पं० लेखराम वह महान संकल्प एवं गुरु निष्ठा ले कर निकले, जिस तरह ऋषि दयानन्द मथुरा से गुरु विरजानन्द की कुटिया से निकले थे। एक ने गालियां खा कर, पत्थर खा कर, ज़हर पी कर वेद की शिक्षा प्रदान की और दूसरे ने वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी और आर्य समाज रूपी वृक्षए को अपने रक्त सें सींचा।

चंचल मन अब गीता में श्री कृष्ण जी के कथनानुसार स्थित-प्रज्ञ में परिवर्तित हो गया था। मन के सब संशय दूर कर के पं० लेखराम ने सभी लोगों के संशय दूर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था, जो प्रेम-रस उन्होंने स्वयं पिया, उस को सारी आर्य जाति को पिलवाना चाहते थे।

अध्याय-५

अँग्रेजों का सार्जेन्ट, दयानन्द का सिपाही

ऋषि दयानन्द के सम्पर्क ने लेखराम के दिल में वह अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी जो जीवन-पर्यन्त दहकती रही । अजमेर से वापिस आते ही पं० लेखराम जी ने अपने समय का अधिकांश भाग आर्य समाज को समर्पित कर दिया ।

अब पं० जी ने मौखिक रूप से अलग-अलग विषयों पर व्याख्यान देने शुरु कर दिए । मद्यपान के निषेध पर एक बहुत प्रभावशाली व्याख्यान अंजुमन हाल में दिया, जिसे सुनने हेतु ज़िला के डिप्टी कमिश्नर एवं सेनाधिकारी भी आए हुए थे.। भाषण का प्रभाव इतना हुआ कि फौज के एक कप्तान ने अपनी कम्पनी में मद्य-पान निषेध कर दिया ।इन्हीं दिनों में पं० जी ने अलग-अलग विषयों पर शास्त्रार्थ करना शुरु कर दिया । नये पुलिस कप्तान ने आप की बदली पेशावर से 'सुआबा' में कर दी । वहाँ जा कर भी पं० जी 'धर्मोपदेशक' पत्रिका के लिए अपने लेख भेजते रहे । सुआबा में भी आपका अपने मुहम्मदियों के साथ शास्त्रार्थ चलता रहा और आपने एक पुलिस इन्सपैक्टर को खरी खरी सुना दी । परिणाम यह हुआ कि इन्सपैक्टर की आज्ञा भंग करने के अपराध में आप का दर्जा छः मास के लिए तोड़ दिया गया और इनका स्थानान्तरण कालूखाँ थाना में कर दिया गया । "धर्मोपदेश" पत्रिका जो आप ने पेशावर में शुरु की थी, सुआबा होते हुए भी आप उसे चलाते रहे और स्वयं अपने वेतन से ५ रु० मासिक भी भेजते रहे, ताकि पत्रिका बन्द न हो किन्तु फिर भी प्रबन्धकों को यह रसाला बन्द करना पड़ा ।

कालूखाँ थाना में तबदीली होने और मुसलमान हाकमों द्वारा टीका टिप्पणी करते रहने के कारण, दासता के जीवन से पं० जी ऊब गये और उन्हों ने २५ जुलाई १८८४ को अँग्रजों की सारर्जेन्टी छोड़ कर ऋषि दयानन्द का वीर सिपाही बनने हेतु अपना त्याग-पत्र दे दिया । अँग्रेज हाकमों नें पं० जी को समझाने का बड़ा प्रयास किया, किन्तु वीर योद्धा अपना कदम पीछे कभी उठा नहीं सकते । जो तीर एक बार चल गया, वह भला वापिस तर्कश में कैसे आ सकता था । उन का त्यागपत्र ३ मास के नोटिस सहित २५ सितम्बर १८८४ को स्वीकार हो गया और ९ वर्ष की दासता का जीवन समाप्त कर पं० लेखराम जी दिन-रात सेवा करने के लिए आर्य समाज की शरण में आ गए।

उन का जीवन पहले ही बड़ा सादा एवं शुद्ध था । वे माँस, शराब, अण्डा

सेवन के सर्वथा विरुद्ध थे । सच्चे धर्म की प्राप्ति ही वे जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझते थे । अब लेखराम जी एक वैदिक वक्ता थे, वैदिक लेखक थे, शास्त्रार्थी थे एवं आर्य मिश्नरी थे । अपने विरोधियों को युक्तियों एवं ठोस प्रमाणों से निरुत्तर करना उन के बायें हाथ का खेल था ।

पेशावर आर्य समाज - पं॰ लेखराम अपने समय के सब से बड़े वैदिक प्रचारक थे और आर्य समाज पेशावर को इस बात का श्रेय एवं गौरव प्राप्त है कि पूज्य पं॰ जी महाराज ने आर्य समाज का कार्य-क्रम पेशावर आर्य समाज से आरम्भ किया । आर्य सभासदों की सूची, पत्र-व्यवहार, आय-व्यय का हिसाब किताब सब कुछ पं॰ जी महाराज स्वयं करते थे । वे पेशावर आर्य समाज के संस्थापक ही नहीं अपितु उस के मन्त्री भी रहे, प्रबन्धक भी रहे और प्रधान भी रहे । पत्र व्यवहार में वे अपने आपको 'मैनेजर पेशावर आर्य समाज' लिखा करते थे । पेशावर से बाहर रहते हुए भी वे अपना सदस्यता शुल्क पेशावर आर्य समाज में लगातार भेजते रहे ।

अभी आप पेशावर में ही थे कि आप को महर्षि दयानन्द के दो पत्र प्राप्त हुए । एक पत्र में गोरक्षा-सम्बन्धी विषय पर प्रार्थना-पत्र लोगों के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिए शिक्षा कमिशन को मैमोरेण्डम भेजने की प्रेरणा थी । पं॰ जी महाराज ने ये दोनों कार्य बड़ी लग्न और निष्ठा के साथ किए ।

अब पं॰ लेखराम जी दयानन्द के वीर सैनिक बन चुके थे और व्याख्यान देना, सहित्य का गहन अध्ययन करना, कटाक्ष करने वालों के उत्तर देना, शास्त्रार्थ करना, शुद्धि करना और मिर्जा गुलाम अहमद कादियां की पुस्तकों का उत्तर लिखना, वैदिक मान्यताओं का मण्डन और वेद विरुद्ध मान्यताओं का खण्डन करना, यह सारा विस्तृत कार्य-क्रम उन की दिनचर्या बन गई । १८८६ में पं॰ जी पेशावर आर्य समाज के प्रधान निर्वाचित हुए ।

आर्य समाज रावलपिण्डी - सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के पश्चात् और दासत्व से मुक्त होने पर पूज्य पं. लेखराम जी रावलपिण्डी आर्य समाज में पहुँचे और वहां के वार्षिक उत्सव में भाग लिया । पहले पहल उन्होंने अपना हस्त लिखित व्याख्यान पढ़कर सुनाया जिसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । विषय था, "आर्य धर्म के आलम गीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान

मजबूत ।" यह व्याख्यान 'सद्धर्म प्रचारक' में छपवाया गया ।

आर्य समाज गुरदासपुर - रावलपिण्डी से पं. लेखराम जी गुरदासपुर आर्य समाज पहुँचे । गुरदासपुर आर्य समाज ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित किया गया था, जहां वे स्वयं सात दिन ठहरे थे और अपने सात महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये थे । वहाँ पहुँचते ही पं. जी ने मिर्जा गुलाम अहमद कादयानि को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। मिर्जा जी तो आए नहीं, किन्तु बहुत विशाल जन-समूह के सामने विद्वान् पं. जी ने मिर्ज़ा के आक्षेपों के उत्तर पढ़े और जनता को बताया कि मिर्ज़ा रब्ब कैसे हो सकता है? वह तो बुलाने पर भी हाज़िर नहीं हुआ , इसलिए सर्व-व्यापक कैसे हो सकता है? लोगों की भ्रान्तियां दूर हुई और लोगों ने पं. जी की हस्तलिखित **पुस्तक** की प्रतियां काफी मूल्य देकर प्राप्त की ।

लाहौर आर्य समाज :- गुरदासपुर से पं. जी लाहौर लौट गए और उपदेशों एवं व्याख्यानों के साथ साथ संस्कृत का गहन अध्ययन करने लगे । ऋषि दयानन्द की अकाल मृत्यु के कारण पं. लेखराम जी का आर्य समाज के प्रति उत्तरदायित्व बहुत विशाल हो चुका था । मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादियां अपने आप को 'खुदा का पैगम्बर' घोषित कर चुके थे और उन्होंने अपने मत की पुष्टि में यह घोषणा-पत्र जारी किया कि उनकी बात न मानने वाला, किसी भी अन्य धर्म का अनुनायी कादियां में आकर एक वर्ष रहे तो मिर्ज़ा जी उसे एक वर्ष में खुदाई चमत्कार दिखाएंगे और यदि वर्ष भर में ऐसे चमत्कार न दिखा पाए तो २०० रुपये मासिक जुर्माने के तौर पर वर्ष के २४०० रुपये उक्त व्यक्ति को देंगे । पं. जी ने इश्तिहार पढ़ते ही ३ अप्रैल, १८८५ ई. को मिर्ज़ा जी के नाम पत्र लिखा कि उन्हें सब शर्तें स्वीकार हैं । वे स्वयं कादियां में आकर एक वर्ष तक रहेंगे और यदि मिर्ज़ा जी उन्हें दैवी चमत्कार न दिखा पाये तो वह २४०० रुपये पं. जी को देंगे किन्तु उक्त २४०० रुपया पहले सरकारी कोष में जमा करवा दिया जाए। जिस दिन पैसा जमा हो जाएगा उस दिन पं. जी कादियां में एक वर्ष के लिए पहुँच जाएंगे ।

मिर्ज़ा जी को ढोल की पोल खुलती गोचर होने लगी और उन्होंने एक और अड़चन लगाई कि वे साधारण ऐरे गैरे नत्थु खैरे लोगों के साथ शर्त नहीं लगाते। उसके साथ शर्त लगाने वाला अपने सम्प्रदाय का कोई नामी व्यक्तित्त्व का स्वामी होना चाहिए । मिर्ज़ा जी पं. लेखराम को साधारण व्यक्ति ही समझते थे । पं० जी ने मिर्ज़ा के पत्र का उत्तर दिया कि वे २४०० रुपया कमाने के लिए मैदान में नहीं उतरे, किन्तु सत्य को सत्य और असत्य को असत्य प्रमाणित करने हेतु ही ऐसा

करना चाहते हैं। फिर मिर्ज़ा ने पं. जी को लिखा कि वे भी २४०० रुपया सरकारी कोष में जमा करवायें। पण्डित जी ने उस का अति सभ्य उत्तर दिया किन्तु इस पत्र-व्यवहार का कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। मिर्ज़ा पं. जी से शास्त्रार्थ करने में कतराता था।

पं. जी के बार २ पत्र लिखने पर मिर्ज़ा ने उन्हे लिखा, "कादियां कोई दूर तो नहीं है, आकर मुलाकात कर जाओ।" पं. जी पत्र मिलते ही कादियां पहुँच गये। स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं :-

"जिस चालबाज बाघ के पास जाने से बड़े-बड़े मतवादी डरते थे, निःशङ्क उसके साथ उसके ही मकान में "दस्त पज्जा" लेने के लिए आ पहुँचे।"

पं. जी पूरे दो महीने कादियां में रहे और 6 बार उनसे शास्त्रार्थ करके निरुतर कर दिया। उन्होनें वहाँ अपने व्याख्यानों द्वारा भोली भाली जनता को मिर्ज़ा के हाथों गुमराह होने से बचाया और आर्य समाज की स्थापना की।

आर्य समाज कादियाँ की स्थापना -- पं. लेखराम जी ने दो मास लगातार कादियाँ में रह कर न केवल मिर्ज़ा जी के 'बुराहीन' की पोल खोली किन्तु मिर्ज़ा के चंगुल में फंसे बहुत से भोले भाले हिन्दु भाइयों को सत्य-पथ पर लाने का प्रयास किया। उन्होंने न केवल मिर्ज़ा की नाक में दम कर दिया, अपितु कादियाँ में एक जबरदस्त आर्य समाज की स्थापना भी की। ज्यों ही पं. जी कादियां से बाहर गए, मिर्ज़ा ने २ दिसम्बर १८८५को विष्णुदास को धमकी दी कि वे शीघ्रातिशीघ्र मुसलमान धर्म अपना ले, नहीं तो 'रब्बी इलहाम' के अनुसार वह मर जाएगा। पं. लेखराम जी को तार द्वारा सूचित किया गया। पं. जी ४ दिसम्बर को ही कादियां में पहुँच गए और विष्णुदास को भ्रष्ट होने से बचाया। पं. जी ने खुले व्याख्यानों द्वारा मिर्ज़ा को चुनौती दी और अहमदिया मत का खण्डन किया। कादियाँ में शेर दहाड़ता रहा और चूहे बिलों में छिपे रहे। विष्णुदास आर्यसमाज का सदस्य बन गया और पं. लेखराम आर्यों का मसीहा। पं. जी की दो निम्नलिखित पुस्तकें छप गई जिन से मिर्ज़ा मत पर गहरी चोट लगी और उनके अनुयायियों की संख्या कम होने लगी और आमदनी भी बहुत गिर गई।

१. तकजीब बुराहीन अहमदिया।

२. नुस्खा खब्त अहमदिया।

व्याख्यानों, पुस्तकों, लेखों एवं लघु-पुस्तकों द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन

एवं अवैदिक सिद्धान्तों का खण्डन करना पं. लेखराम की करामात थी।

आर्य समाज कहूटा की स्थापना - पेशावर व कादियां में 'आर्य समाज' स्थापित करने के पश्चात् पं. लेखराम जी ने अपने पैतृक गांव कहूटा में भी आर्य समाज की स्थापना की और इलाके के अधिकांश लोगों को आर्य समाजी बनाया। इनके सम्पर्क में आकर इलाके के बहुत से लोगों ने मांस एवं शराब का सेवन बन्द कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते हैं कि आम लोकोक्ति तो यह है "घर का जोगी, जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध।" परन्तु पं. लेखराम जी के गांव के लोग भी इन का बहुत मान, सम्मान करते थे।

नाहन में आर्य समाज की स्थापना - पं. जी ने अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाते हुए पहाड़ी क्षेत्र नाहन में भी आर्य समाज की स्थापना की। लोगों को मांस मदिरा सेवन से बचाया और ऋषि दयानन्द का अनुयायी बनाया।

आर्य गजट फिरोजपुर के सम्पादक - १८८७ के आरम्भ में ही पं. लेखराम को 'आर्य गजट' का सम्पादक बना दिया गया। उस समय अंग्रेजी की 'आर्य पत्रिका' के इलावा यही एक मुख्य पत्र था जो उर्दु में फ़िरोज़पुर से छपता था। पं. जी के हाथ में 'आर्य गजट' चमक उठा और पढ़ने वालों की संख्या दुगनी हो गई। पाठक पं. जी के लेखों को बड़े ध्यान से पढ़ते थे। पं. जी दो वर्ष तक इस के सम्पादक रहे। क्योंकि प्रचारक को जगह जगह जाना पड़ता था, इसलिए सम्पादन कार्य छोड़ना पड़ा।

अध्याय - ६

आर्य मुसाफिर बन गए

महर्षि दयानन्द को देह त्यागे साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे किन्तु किसी ने उन का जीवन चरित्र लिखने का प्रयास नहीं किया। पण्डित जी एक स्थान पर टिक कर बैठ नहीं सकते थे, उन्होंने भारत के भिन्न-भिन्न नगरों में, ग्रामों में, वनों और पहाड़ों में जा-जा कर स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र के लिए सामग्री एकत्रित करनी शुरु की। एक आर्य से 'आर्य मुसाफिर' बन गये। मुलतान आर्य समाज ने अपने विशेष अधिवेशन में १२ अप्रैल, सं° १८८८ को प्रस्ताव पास किया कि ऋषि दयानन्द के जीवन पर सामग्री इक्ठ्ठी कर के पं° लेखराम जी को दयानन्द का जीवन-चरित्र लिखने का कार्यभार सौंपा जाए। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने १ जुलाई १८८८ के अधिवेशन में मुलतान आर्य समाज का सुझाव स्वीकार किया और यह महान कार्य पं° लेखराम को सौंप दिया। पं° जी ने नवम्बर १८८८ में आर्य गजट के सम्पादन का कार्य छोड़ दिया और दयानन्द के ऐसे दिवाने बने कि लोग उन्हें दयानन्द का सौदाई कहने लगे। उनका दयानन्द के प्रति प्यार पागलपन की सीमा तक पहुँच चुका था और वे कहा करते थे कि देश और धर्म पर मर मिटने वाले पागल ही होते हैं।

"इन पागल दिमागों मे, भरे अमृत के लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो, हम पागल ही अच्छे हैं।।"

दयानन्द के जीवन-सम्बन्धी घटनाएं इक्ठ्ठी करते करते वे देश के कोने-कोने में घूमें और जहाँ कहीं से भी पता चला कि ऋषि दयानन्द वहाँ गये थे तो वहाँ पहुँचते। लगभग १० वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् आर्य मुसाफिर ने लगभग ३००० पृष्ठों की सामग्री एकत्रित की। व्याख्यानों, लेखों द्वारा विद्यर्थियों के उत्तर प्रत्युत्तर का कार्य-क्रम भी साथ-साथ चलता रहा।

जब आर्य मुसाफिर ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनाएं एकत्रित करने हेतु लाहौर पधारे तो वहाँ उनका महात्मा मुन्शीराम जी के साथ प्रथम साक्षात्कार हुआ और दोनों की मित्रता चिरस्थायी हो गई। मुन्शीराम जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए, पं. जी का 'वेद ईश्वरीय ज्ञान' सम्बन्धी व्याख्यान सुन कर इतने मोहित हुए कि सदा के लिए आर्य मुसाफिर के प्रंशसक बन गए और बाकी सब उपदेशकों से अधिक सम्मान इन्हें ही देते थे।

लाहौर से 'आर्य मुसाफिर' जालन्धर पहुँचे। जहाँ उनके व्याख्यान हुए और

शिक्षित लोगों से जो सामग्री इकट्ठी हुई, प्राप्त कर के सीधे मथुरा पहुँचे, जहाँ ऋषि दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द जी के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ पं० जी स्वामी दयानन्द के सहपाठी युगल किशोर, दामोदर चौबे और पं० हरिकृष्ण जी से मिले और लगभग एक मास तक ऋषि दयानन्द सम्बन्धी घटनाएं लिखते रहे। मथुरा से अजमेर पहुँचे, जहाँ उन्होंने ऋषि दयानन्द से साक्षात्कार किया था। इसी स्थान पर स्वामी जी की अन्त्येष्टि हुई थी। आर्य मुसाफिर की पुस्तकें पढ़ कर एक अब्दुल रहमान नामक मुसलमान मुहम्मदी मत छोड़ कर आर्य समाज की शरण में आ गया और उस का नाम सोमदत्त रखा गया। पं० जी के भाषणों से मुसलमानों एवं पौराणिकों के शहर अजमेर में धूम मच गई। हमारे आर्य मुसाफिर सर्वथा निडर थे। जब आर्य बन्धुओं के कहने पर उनके लिए रात-दिन को चार पहरेदारों की व्यवस्था की बात हो रही थी तो पं० जी गर्ज कर कहने लगे, "मुझे कोई जरूरत नहीं। तुम लोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है?" वहाँ 'वैदिक विजय पत्र' नामक पत्रिका भी निकाली गई, जिस में इन के विद्वत्ता-पूर्ण लेख छपते रहे।

अजमेर से आप राजस्थान के नगरों से होते हुए नसीराबाद पहुँचे। उस के बाद मेरठ में कुछ दिन रह कर प्रचार कार्य करते रहे। मुसलमानों एवं हिन्दुओं की शंका-निवारण हेतु इन्होंने 'मसलानियोग' नामक ट्रेक्ट लिख कर लोगों का मार्ग-दर्शन किया। विधवा विवाह के सम्बन्ध में इन्होंने ज़ोरदार प्रचार किया। मेरठ से अलीगढ़ पहुँचे और बरौदा में आर्य समाज की स्थापना की।

अलीगढ़ से संयुक्त प्रान्त में प्रचार करते हुए हमारे आर्य मुसाफिर रुग्णावस्था में जालन्धर पहुँचे और दो सप्ताह तक लाला देवराज जी के यहाँ रहे। तत्पश्चात् आप नकोदर पहुँचे और वहाँ आर्यसमाज की स्थापना की। फिर आप लाहौर, सहारनपुर, कानपुर होते हुए वैदिक नाद बजाते हुए प्रयाग पहुँचे, जहाँ आप लगभग एक मास रहे। पौराणिक पण्डितों ने दयानन्द के वेद-भाष्य के अर्थों के अनर्थ करने का प्रयास किया था। आर्य मुसाफिर ने पुनः वेद भाष्य का अर्थ करवाया और छपवाने की व्यवस्था की। वहाँ इन्होंने दयानन्द द्वारा स्थापित यन्त्रालय भी देखा जहाँ पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त जी कार्यरत थे।

प्रयाग से मिरजापुर में पहुँच कर सारगर्भित व्याख्यान दिए। ऐसे ज़बरदस्त व्याख्यान मिरजापुर के लोगो ने पहले कभी सुने नहीं थे। वहाँ एक शूद्र को यज्ञोपवीत धारण करवा कर लोगों की वाह-वाह लूटी। काशी और मिर्ज़ापुर के गुण्डे अपनी गुण्डागर्दी के लिए प्रसिद्ध हैं। वहाँ के एक वकील जो मौलवी भी थे और गुण्डों के सरदार भी, उन्होंने पं० जी से मज़हबी छेड़-छाड़ की। किन्तु

निरुत्तर हो कर भाग गए। पं॰ जी की निर्भीकता ने गुण्डों के सरदार के छक्के छुड़ा दिए। गुण्डागर्दी करने आए लोग दुम दबा कर शास्त्रार्थ से भाग गए। तत्पश्चात् पं॰ जी काशी, डुमराव, दानापुर, बांकीपुर और पटना में प्रचार करते रहे।

बांकीपुर में पं॰ लेखराम जी केवल ६ दिन रहे। किसी ने झूठी तार भिजवा दी थी कि पं॰ लेखराम जी मारे गए हैं। वहाँ के डा॰ शाह लिखते हैं कि अपनी मृत्यु का समाचार सुन कर आर्य मुसाफिर तनिक भी विचलित नहीं हुए और हँस कर कहने लगे, "मन्त्री जी ! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है, किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर और कोई दूसरी मृत्यु नहीं - तवारीख पढ़ों।" उस समय कोई क्या कह सकता था कि धर्म पर शहीद होने वाली ऐसी ही अद्वितीय मौत पं॰ लेखराम को नसीब होगी। लोगों ने उन को गालियां दी, पत्थर फैंके, उन की पुस्तकें जलाईं, ट्रेक्ट फाड़ दिए, मार डालने की धमकियां दी गई किन्तु आर्य मुसाफिर अडिग हो कर सदा चलते रहे। 'डर' नाम का शब्द उन के जीवन-शब्दकोष में नहीं था।

एक इच्छा जो पूर्ण न हो सकी - बाँकीपुर आर्य समाज के मन्त्री जी ने इन से पूछा कि आप उर्दु और फारसी के प्रकाण्ड विद्वान हैं, आप 'सत्यार्थ-प्रकाश' का अनुवाद फारसी में क्यों नहीं करते ? पं॰ जी ने उत्तर दिया कि वे स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित्र का लेखन कार्य समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी में अनुवाद करना चाहते हैं और वैदिक धर्म का प्रचार करने और इस्लाम की पोल खोलने वे मुसलमानों के मुख्य देशों, अफगानिस्तान, रशिया, अरेबिया, मिश्र, ईरान, तुर्किस्तानादि देशों में जाएंगे। किन्तु अफसोस इस बात का है कि आर्य मुसाफिर की यह हार्दिक इच्छा पूरी न हो सकी और पहले ही जीवन लीला समाप्त हो गई।

बाँकीपुर से कलकत्ता होते हुए आर्य मुसाफिर हरिद्वार कुम्भ के मेले में ७ मार्च, १८९१ को पहुँचे। वेद-प्रचार किया। यह कुम्भ का मेला दयानन्द के देहावसान के पश्चात् पहला कुम्भ था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से वहां प्रचार कार्य हुआ और जालन्धर पहुँच कर पं॰ लेखराम जी ने एक ट्रेक्ट छपवाया, जिस में प्रचार-कार्य का पूर्ण हवाला दिया गया। हैदराबाद में पहुँच कर आप के अति प्रभावशाली व्याख्यानों से प्रभावित हो कर १० युवकों ने ईसाई मत ग्रहण करने का इरादा छोड़ दिया। हैदराबाद में कई दिनों तक मुल्लाँ लोगों से शास्त्रार्थ करके आपने दीवान सूर्यमल के दो पुत्रों को मुहम्मदी बनने से बचा लिया। मिन्टगुमरी, लाहौर, अमृतसर में व्याख्यान देते हुए आप नाहन पहुँचे, जहाँ आप के चार व्याख्यान हुए और नाहन में भी आर्यसमाज की स्थापना हुई।

अध्याय - ७

राजस्थान में धूम मचा दी

पं० लेखराम जी ने अपने हाथों से कई स्थानों पर आर्य समाजों कि स्थापना की और पुराने आर्य समाजों में नई स्फूर्ति भर दी। २१ मार्च १८९२ को मियानी, जिला शाहपुर में नवीन आर्य समाज की स्थापना की और राजस्थान में स्थान स्थान पर घूम कर ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनाएं एकत्रित कीं। बूँदी में नित्यानन्द और स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी से शास्त्रार्थ करने पहुँचे तो वे दोनों शास्त्रार्थ से डर कर दौड़ गए। जहाजपुर में पं० जी के व्याख्यानों ने धूम मचा दी। वहाँ उपस्थित एक मुसलमान सूबेदार ने कटाक्ष करते हुए कहा, "ऐसे तीस मार खाँ हो तो बूँदी से क्यों भाग आए ?" हाज़िर जवाब आर्य पथिक ने चपाट से उत्तर दिया-"विपक्षी शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आये हम हिजरत करके तो नहीं आए।" मुसलमान सूबेदार ने गुस्से में आकर तलवार निकाल ली। पं० जी कहाँ चुप रहने वाले थे कड़क कर गर्जे, "मुझे तलवार की धमकी देता है, अगर पठान का है तो तलवार निकाल कर मज़ा देख।" सूबेदार भीगी बिल्ली बन कर बैठा रहा और सभा में उपस्थित किसी अन्य ने चूँ तक न की।

आर्य मुसाफिर का यह दृष्टिकोण था कि भारतीय जनता का तब तक कल्याण नहीं हो सकता, जब तक लोगों को वेदों में पूरा-पूरा विश्वास नहीं हो जाता। उन्होनें प्रचार द्वारा लोगों को यह समझाया कि उपनिषद वेदों से ही निकले हैं। वे उपनिषदों का अनुवाद करना चाहते थे किन्तु असमय शहीद हो जाने के कारण उन के दिल की दिल में रह गई। अजमेर में उन्होनें लगभग १५ व्याख्यान दिए और श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। स्वामी दयानन्द के जन्म स्थान के विषय में, अब तक किसी को कुछ पता नहीं था, हमारे आर्य पथिक जी ने स्थान स्थान पर जा कर और अनेक सूत्रों द्वारा यह पता लगाया कि स्वामी जी महाराज का जन्म मोरवी राज्य में हुआ था, इस स्थान को ढूँढ़ निकालने के लिए वे अहमदाबाद पहुँचे, नगर नगर, ग्राम-ग्राम चलते रहे, पूछते रहे किन्तु १२ नवम्बर १८९२ तक स्वामी दयानन्द का टंकारा में घर, जहाँ उनका जन्म हुआ था, ढूँढ़ न पाए। उन का अनथक प्रयास चलता रहा, उन के हृदय की पुकार थी :-

"आये हैं तेरे दर पै तो कुछ करके हटेंगे ।

या वस्ल (मिलन) ही होगा या मर के मिटेंगे ।।"

आर्य पथिक के ला॰ मुन्शीराम को लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि मौरवी राज्य में, टंकारा के आस-पास कोई व्यक्ति आर्य समाज के नाम और काम को नहीं जानता था । जिस ऋषि ने वेद-ज्ञान की ज्योति जला कर सब ओर प्रकाश किया, स्वामी जी के जन्म-स्थान के इलाके में सभी लोग आर्य समाज और स्वामी जी के सन्देश से अनभिज्ञ थे । दीपक तले अन्धेरा था । उस इलाके में दो बातों का ज़ोर था 'एक छूआछूत और दूसरा ज़ोर का ज़्वर ।' हमारे आर्य पथिक भी ज्वर से पीड़ित हो गए, किन्तु धुन के धनी ने अपना प्रयास जारी रखा और जनवरी १८९३ में ऋषि दयानन्द का टंकारा में वह घर, जहाँ उन का जन्म हुआ था, ढूँढ़ निकाला । उन्होनें वह शिव मन्दिर भी देखा, जहाँ बालक मूलशंकर के मन में सच्चा शिव प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी और उसी जिज्ञासा ने मूलशंकर को ऋषि दयानन्द बना दिया था। अपनी खोज-पूर्ण यात्रा में सफल हो कर आर्य पथिक आगरा, अजमेर, जयपुर पहुँच कर अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देते रहे और अपनी खोज के आधार पर ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी घटनाएं बताते रहे ।

राजस्थान से जालन्धर :- इसी समय पंजाब के आर्य समज में दो प्रकार की विचार-धारा के लोग आपस में उलझ गए । एक विचारधारा के अनुसार गुरुकुल पद्धति से शिक्षा और शाकाहारी भोजन द्वारा ही ऋषि दयानन्द की विचार-धारा को आगे साकार करना था । दूसरी विचार-धारा के बन्धु वैदिक शिक्षा के साथ योरपीय शिक्षा के पक्षधर और माँस भक्षण के हक में थे। पहली विचार-धारा के लोग 'घास पार्टी' और दूसरी विचार धारा के लोग 'माँस पार्टी' कहलाने लगे । उस समय के आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ने आर्य पथिक को जालन्धर बुलवा लिया और पं॰ जी महाराज ने अपने लेखों एवं भाषणों द्वारा इस विचार-धारा की झड़ी लगा दी कि माँस भक्षण वेद विरुद्ध एवं घोर पाप है । स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं कि जैसे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा था -

सवा लाख से एक लड़ाऊँ ।

ता गोबिन्दसिँह नाम कहाऊँ ।।

इसी प्रकार पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ने यह सोचा कि विरोधी मत वालों से टक्कर लेने के लिए केवल एक ही लेखराम काफी है । धन, लोभ,

मान, सम्मान, प्रशंसा के वशीभूत होकर कई बार बड़े-बड़े साधु, महात्मा एवं प्रचारक गिर जाते हैं, किन्तु वीर लेखराम में कोई कमज़ोरी नहीं थी और वे अपनी बात को डंके की चोट पर कहा करते थे और प्रमाणों की ऐसी वर्षा करते थे कि कड़े से कड़ा विरोधी भी उनकी विद्वत्ता की प्रंशसा किए बिना नहीं रह सकता था। उन्होंने मास भक्षण निषेध पर एक पुस्तक भी लिखी। जिसका उन्होंने नाम दिया- "आर्य समाज में शक्ति फैलाने के असल उपाय।" यह पुस्तक 'कुलियात-आर्यमुसाफिर' में भी संग्रहीत है।

गुरु विरजानन्द एवं दयानन्द का जन्म स्थान - सभी पाठकों को स्मरण रहे कि अपने अनथक परिश्रम एवं लग्न से गुरु विरजानन्द एवं स्वामी दयानन्द का जन्म स्थान ढूँढ निकालने का श्रेय पं० लेखराम आर्य मुसाफिर को ही जाता है । इन दोनों महानुभावों ने अपने बारे भें एवं अपने जन्म स्थान बारे में किसी को कुछ नहीं बताया था । जैसे हम ऊपर लिख चुके हैं ऋषि दयानन्द के टंकारा में जन्म स्थान एवं शिव मन्दिर को ढूँढ़ने में उन्होंने सतत प्रयास किया और ढूँढ़ लिया । 'जिन खोजा तिन पाइया' वाली बात इन पर लागु होती है । १८ अप्रैल, १८९६ को पं० लेखराम जी का एक अद्वितीय भाषण आर्य समाज अड्डा होशियारपुर, जालन्धर में हुआ । उस भाषण को स्वामी श्रद्धानन्द ने भी बड़ी श्रद्धा से सुना । इस व्याख्यान में उन्होनें सब से पहली बार आर्य जनता को सम्बोधित करते हुए बतलाया कि दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म स्थान करतारपुर ज़िला जालन्धर के समीप एक गांव में हुआ । स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा कि "किसी महात्मा का अपने इलाके का होने पर इलाका निवासियों के लिए प्रन्नता की बात होती है ।"जालन्धरियों को भली भांति याद रखना चाहिए कि वे अपने आपको स्वामी विरजानन्द को स्वदेशी सिद्ध करना चाहते हैं तो उन को शम और दम की दृढ़ शिक्षा लेनी होगी।"

पं० लेखराम जी ने 'आर्य समाज की जरुरत' पर एक लेखमाला लिखी जिस में आर्य समाज के नियमों एवं मान्यताओं पर बल दिया । उनकी यह प्रबल धारणा थी कि आर्य जाति का कल्याण आर्य समाज की मान्यताओं को धारण करने में है।

अध्याय ८

पं॰ लेखराम और लक्ष्मी देवी का विवाह

पं॰ लेखराम जी ने जब स्वामी दयानन्द सरवस्ती के अजमेर में दर्शन किए और संशय निवारण किया, तब स्वामी जी महाराज ने इन्हें अष्टाध्ययी की एक प्रतिलिपि उपहार में देते हुए शिक्षा दी कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह मत करना । पं॰ लेखराम जी ने अपने गुरु के आदेश की पालना की । घर वालों ने मंगनी के लिए लड़की वालों से हाँ कर दी, किन्तु लेखराम जी न माने । उनके पिता और चाचा गण्डाराम जी ने बहुत आग्रह किया, किन्तु दयानन्द का दिवाना टस से मस न हुआ । उन्होंने अपने चाचा जी को एक नट की कहानी सुनाई कि एक राजा ने नट से कहा कि तुम नकल तो बहुत अच्छी लगा लेते हो, योगी की नकल लगाओ । नट ने योगी की बहुत अच्छी नकल उतारी, योगी का पूरा अभिनय किया और तमाशा समाप्त होते ही ईनाम के लिए राजा के आगे हाथ फैला दिया । राजा बोला, यह कैसा योगी है ? नट बोला, मैं योगी नहीं, नकलची हूँ । पं॰ जी ने अपने चाचा गण्डाराम जी को बतलाया कि वह ऋषि दयानन्द का अनुयायी है, २५ वर्ष से पहले विवाह नहीं करेगा । वह कोई नट नहीं कि विवाह की नकल उतारेगा। नवयुवक का हठ देखकर सभी घर वाले चुप हो गए और जिस कन्या का विवाह लेखराम से होना निश्चित हुआ था, उसका विवाह पं॰ लेखराम के छोटे भाई तोता राम से कर दिया । घर आई लक्ष्मी घर में रह गई ।

उधर लेखराम जी ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र लिखने और सारे देश में आर्य समाज का प्रचार करने हेतु आर्य मुसाफिर बन गए । समय का चक्र चलता रहा और पं॰ लेखराम जी के जीवन के ३५ वर्ष बीत गए । विवाह करने के लिए समय ही न मिला और ऋषि दयानन्द द्वारा निर्धारित २५ वर्ष की सीमा से १० वर्ष अधिक निकल गए । संवत १९५० के ज्येष्ठ मास में जब वे ३६ वें वर्ष में थे, उनका विवाह एक पहाड़ी कन्या कुमारी लक्ष्मी देवी से हुआ, जिसकी आयु १६ वर्ष थी । विवाह संस्कार आर्य समाज की विधि से हुआ और विवाह में इन्होंने अपने गाँव के पौराणिक रीति रिवाजों को ही नहीं तोड़ा, अपितु विवाह के पश्चात् पंजाब की रीति अनुसार तम्बोल इत्यादि कुछ

नहीं लिया ।

लक्ष्मी देवी जी पढ़ी हुई न थी । इसलिए स्त्री शिक्षा पर बल देने वाले आर्य पथिक ने विवाह के पश्चात् सब से पहले अपनी पत्नी को शिक्षित करना प्रारम्भ किया । उनकी पत्नी की अपने पति के प्रति अनन्य भक्ति थी और उन का गृहस्थ-जीवन स्वर्ग के समान था । विवाह के कुछ ही दिनों के पश्चात् पं० जी फिर धर्म-प्रचार पर निकल पड़े ।

लक्ष्मी देवी बहुत कम बोलती थी और बड़े ही शील स्वभाव की थी । जब पं० लेखराम उन्हें अपने साथ जालन्धर ले आए तो लक्ष्मी जी ने स्त्री आर्य समाज में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया । पं० लेखराम जी चाहते थे कि उनकी पत्नी स्त्री जाति की उसी प्रकार सेवा करे, जैसे वे स्वयं पुरुष जाति की सेवा में कार्यरत थे । लक्ष्मी जी प्रतिदिन हवन करने लग पड़ी । उन दोनों का जीवन तप एवं त्याग का जीवन था । वे एक सच्चे ब्राह्मण थे और उनका जीवन एक आदर्श सद्गृहस्थ का जीवन था । पं० लेखराम जी का वेतन २५ रुपये मासिक था और उन्होंने वेतन वृद्धि के लिए कभी कोई इच्छा व्यक्त नहीं की । उनके विवाह के पश्चात् उन का वेतन सभा द्वारा ३० रुपये मासिक निश्चित किया गया । जब उन के घर पुत्र उत्पन्न हुआ तो सभा ने उन का वेतन ३५ रुपये मासिक कर दिया ।

पं० जी को तीन शोक - पं० जी को एक वर्ष में तीन शोक हुए । जून १८८६ में पं० लेखराम जी के पूज्य पिता जी की मृत्यु हो गई । वैदिक प्रचार में इतने खो चुके थे कि अन्त्येष्टि के लिए भी घर न पहुँच सके । फिर छोटे भाई तोता राम की मृत्यु हुई । पं० जी की अनुपस्थिति में ही दोनों के अन्तिम संस्कार हो गये । बाद मेंपं० जी ने पिता और भाई के मृतक शरीरों की भस्म जेहलम नदी में प्रवाह की । तीसरा शोक था अपने प्यारे पुत्र सुखदेव की मृत्यु का जो सवा साल की अल्प आयु में ही चल बसा । एक ही वर्ष में परिवार में तीन शोक हुए किन्तु वीर पं० लेखराम अपने पथ पर अडिग रहे ।

जालन्धर में रहते हुए ही लक्ष्मी देवी की गोद हरी हुई और उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । वे अपनी पत्नी और पुत्र को भी आर्य समाज के वार्षिक उत्सवों पर लेकर जाने लगे । मथुरा के उत्सव में उन का लाड़ला सुखदेव रुग्ण हो गया । पं० जी उसे वापिस जालन्धर ले आए और स्वयं शिमला के वार्षिकोत्सव में चले गए। सुखदेव की दशा बिगड़ती गई और सवा साल की आयु में वह देह त्याग कर स्वर्गलोग का पथगामी बन गया। पुत्र-शोक से पं० जी विचलित न हुए और एक

चमत्कारिक सहन-शीलता का परिचय दिया। जालन्धर की जिस भूमि में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, उसी भूमि पर उसकी मृत्यु-शय्या बनी।

लक्ष्मी देवी बड़े ही नम्र स्वभाव की देवी थी और अपरिचित स्त्रियों से संकोचशील थी और केवल उन्हीं बहनों से विचार-विमर्श करती थी, जिन से वे परिचित थी। पं० लेखराम जी चाहते थे कि उनकी भांति उनकी पत्नी भी वैदिक मिश्नरी के रूप में महिला मण्डल में प्रचार करे। इस उद्देश्य से वह अपनी पत्नी को अम्बाला एवं मथुरा के उत्सवों में ले जाने लग पड़े थे। किन्तु विधाता ने पहले तो इनका इकलौता पुत्र छीन लिया और फिर लेखराम जी शहीद हो गए।

अपने पुत्र और पति दोनों का वैदिक धर्म की सेवा में बलिदान देकर सती लक्ष्मी देवी अपनी सास के पास चली गई और रावलपिण्डी रहने लगी। बाद में महात्मा श्रद्धानन्द जी की विशेष प्रेरणा और पं० लेखराम जी के चाचा गण्डाराम की इच्छानुसार लक्ष्मी देवी जी जालन्धर आकर रहने लगी। पुत्र और पति के वियोग में वह सूख कर काँटा हो चुकी थी और पाचन शक्ति बहुत खराब हो गई थी। रावलपिण्डी, जालन्धर ओर लाहौर में जब भी देवी जी वार्षिक उत्सवों में जाती तो पं० लेखराम जी के सम्बन्ध में भजन, भाषण सुन कर मूर्छित हो जाया करती थी। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज आर्य प्रतिनिधि पंजाब के प्रधान थे और देवी जी की मूर्छितावस्था को देख कर उन्होंने आदेश दिया कि कोई भी उत्सव जिस में देवी लक्ष्मी जी विद्यमान हों उस में पं० लेखराम का गुण-गान न किया जाए।

रावलपिण्डी आर्य समाज के उत्सव पर वेद प्रचार की अपील की गई और व्याख्यान कर्ता ने बड़े मार्मिक शब्दों में पं० लेखराम के बलिदान का चित्रण किया। लक्ष्मी देवी के पास और तो कुछ था नहीं, उन्होंने सोने की बालियाँ कानों से उतार कर वेद-प्रचार निधि के लिए दान कर दी। देवी के सम्बन्धियों ने बड़ा ऊट पटांग कहा, देवी को गालियाँ एंव झिड़कियाँ सुननी पड़ी, किन्तु सहनशीलता की मूर्ति ने सबकुछ धैर्य से सहन किया।

ऐसी बहु कहाँ मिलेगी - कान की बालियाँ दान कर देने पर सास ने लक्ष्मी देवी को बहुत डाँटा, किन्तु लक्ष्मी देवी के मन में कोई मलिनता नहीं आई। आर्य प्रतिनिधि/सभा पंजाब की ओर से १३ रुपये मासिक पेन्शन के रूप में शहीद के परिवार को दिये जाते थे। अन्तरङ्ग सभा के सदस्यों ने चिंतन करके यह निर्णय

किया कि चाहे पेन्शन की राशि की पूरी हकदार सती लक्ष्मी देवी है, परन्तु क्योंकि शहीद की माताजी भी साथ ही रहती हैं इसलिए पैन्शन की राशि का बँटवारा कर दिया जाए। ८ रुपये लक्ष्मी देवी जी रख लिया करें और ५ रुपये माता जी को भेजे जाएं। पाठकों को सुनकर हैरानी होगी कि लक्ष्मी देवी ने कहा कि १० रुपये माता जी को दिये जाएं और उसके लिए केवल ३ रुपये ही प्रर्याप्त हैं। ऐसी बहु कहाँ मिलेगी जो पति के शहीद हो जाने पर अपनी सास की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकताओं से बड़ा समझती है और मुसीबतों के पहाड़ के सामने सी नहीं करती। अप्रैल, १९०० में लक्ष्मी देवी के रहने का प्रबन्ध लाला नगीनामल के घर पर किया गया था और वह कन्या महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने लगी थी। निर्धनता इतनी कि एक बार ही भोजन बना कर दिन में दो बार खा लिया करती थी। १९०१ में उन्होंने कन्या आश्रम जालन्धर का कार्यभार सम्भाल लिया और उन्होंने छात्राओं पर पूर्ण नियंत्रण करके अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया। किन्तु उन की बिमारी बढ़ती गई कि वह दिन में तीन बार मूर्छित होने लगी। कन्या आश्रम के मैनेजर लाला सोमनाथ और उन की पत्नी ने बड़ी सेवा की।

दृढ संकल्प – लक्ष्मी देवी जी अपने पति की भांति दृढ संकल्प की स्वामिनी थी। डाक्टरों के मना करने पर भी वह गुरुकुल काँगड़ी के उद्घाटन समारोह पर पहुँच गई। १९०२ की बात है। लक्ष्मी जी स्वामी श्रद्धानन्द की पुत्री वेदकुमारी को साथ लेकर गुरुकुल पहुँच गई। उनके पास केवल तीन हज़ार रुपया था, उस में इन्होंने दो हज़ार रुपया गुरुकुल के लिए दान कर दिए। जब स्वामी जी ने उन्हें परामर्श दिया कि एक विधवा का पैसा ही तो सहारा होता है। अत: उन्हें इतनी अधिक राशि दान में नहीं देनी चाहिए तो लक्ष्मी देवी जी ने उत्तर दिया।

"भ्राता जी ! जीवन का भरोसा नहीं है। न जाने कब प्राण निकल जावें ? यदि संसार के कहने का ही विचार किया जाएगा तब तो कोई शुभ कार्य नहीं हो सकेगा।"

गुरुकुल के उत्सवोपरान्त वह रावलपिण्डी पहुँची और घर वालों से दो हज़ार रुपया दान करने पर बड़ी फटकार खाई, ताने सुने और शारीरिक स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ने लगी। उस समय में एक्स-रे एवं स्केनिंग जैसी सुविधाएं प्राप्त नहीं थी। कई डाक्टरों ने क्षयरोग और कईयों ने लिवर ख़राब होने का रोग बतलाया। उनकी ऐसी हालत देख कर स्वामी श्रद्धानन्द भी जालन्धर पहुँच गए। देवी जी को विश्वास हो गया था कि जीवन लीला समाप्त होने वाली है। उन्होंने

अपनी अन्तिम वसीयत बाबू अमरदास वकील को लिखवा दी जिसके अनुसार उन्होंने दो हज़ार रुपया तो गुरुकुल को दान दिया था, अपने सारे आभूषण जो लगभग आठ सौ रुपये के थे और चार सौ रुपया नकद अपनी सास को दे दिया। सन्दूक में कुछ रेशमी कपड़े और ४८ रुपये थे, जो उसने एक अनाथ बालिका को दे दिए जिसका विवाह होने वाला था। शेष रुपया उन्होंने लेखराम निधि में भेंट कर दिया। इस के पश्चात् उनकी वाणी बन्द हो गई और ३ जुलाई १९०२ को उनके प्राण पखेरु उड़ गए। मृत्यु के समय लक्ष्मी देवी की आयु २५ वर्ष की थी। और बलिदान के समय पं. लेखराम थी आयु ३९ वर्ष थी।

पं॰ लेखराम और देवी लक्ष्मी ने इस देश की भलाई के लिए और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया। दोनों का वैवाहिक जीवन केवल चार वर्ष रहा। १८९७ से १९०२ तक ५ वर्ष का जीवन। लक्ष्मी देवी का सती का जीवन था। प्यारे पुत्र और पति की मृत्यु हो गई और उसने प्राण छूटने से पहले अपना सर्वस्व दान कर दिया और आखरी साँस यह मनन कर के छोड़ी,
"ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।"
'न कुछ साथ ले कर आई थी, न कुछ साथ लेकर जा रही हूँ।'
ईश्वर की कृपा हुई, जो कुछ उस के पास था, प्राण छोड़ने से पहले प्रभु से यह विनती कर के दान कर दिया।

मेरा इसमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझ को सौंपते का लागे है मेरा॥

अध्याय ९

प्रचार कार्य और तेज़ हुआ

आर्य पथिक को रात-दिन एक ही धुन सवार थी कि अधिक से अधिक लोगों को आर्य समाज की शरण में ला कर समाज का बुहमुखी कल्याण किया जाए। वह आर्य समाज के ऐसे युलिसिज़ (ulysses)थे, जिन्हें आगे आगे बढ़ने में ही आनन्द आता था। रुकना या ठहरना उन के लिए कष्टदायी था। वे लाहौर और जोधपुर पहुँचे तथा वेदों के अनुसार माँस खाना निषेध है - ऐसा प्रचार किया। जोधपुर के राजा प्रतापसिंह को उपदेश दिया, "माँस भक्षण पाप है। वेदों में हानिकारक पशुओं को दण्ड देने एवं मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु माँस उन का भी अभक्ष्य है।" आपने वर्ष १८९६ में गुरदासपुर, श्री हरगोबिन्दपुर, पेशावर, जालन्धर, लाहौर, शाहबाद, मिण्ट-गुमरी, कुरुक्षेत्र, करनाल, कवेटा, कोहटा एवं बन्नु आदि अनेक स्थानों पर घूम-घूम कर आर्य समाज के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों के सम्बन्ध में प्रचार-कार्य किया। अपने समय के सब से बड़े वक्ता एवं विद्वान को सुनने के लिए लोग लालायित रहते थे और सभा से सभी आर्य समाजों की यही मांग होती थी, कि उन के सर्व-प्रिय वक्ता को उन के अधिवेशन में भेजा जाए। लाला कांशीराम पं० जी को आर्य समाज का अली कहकर पुकारते थे।

ऋषि दयानन्द के जीवन की बहुत सी घटनाए एकत्रित कर ली थी। किन्तु पुस्तक का रूप देने के लिए समय बहुत कम निकलता था। वे तो सारे देश के लिए आर्य पथिक बन चुके थे और प्रत्येक स्थान पर उन की मांग थी। आर्य प्रतिनिधि सभा उन को बाँधने के लिए कुछ नियम बनाती थी, परन्तु पं० जी जैसे शेर को नियमों की जञ्जीरों में कौन बाँध सकता था ? जब कभी सुनते थे कि कोई हिन्दु मुसलमान बनाया जा रहा है तो वहीं पहुँच जाते थे। शास्त्रार्थ के लिए शेर की भांति गर्जते थे और यदि कहीं सभा के अधिकारी पूछ बैठें तो धमकी दे कर कहते थे कि मैंने तो आर्य समाज का प्रचार-कार्य किया है, यदि आप की पूर्व स्वीकृती नहीं ली तो वेतन काट लो। उन्होंने अपना वेतन बढ़ाने के लिए कभी नहीं कहा, वेतन कट जाने की कभी परवाह नहीं की। उन्होने तन, मन, धन से आर्य समाज के प्रचार एवं प्रसार हेतु सेवा की।

जनवरी १८९५ में पं० लेखराम जी अपनी धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी के साथ

लाला जीवनदास के मकान के चौबारे में रहने और ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र की घटनाएं, जो उन्होंने १० वर्ष की घोर तपस्या से ३००० पृष्ठों में एकत्रित की थी, उन्हें अन्तिम रूप देने का दृढ़ संकल्प किया। साथ ही साथ उन्होंने ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य की अशुद्धियाँ छाँट कर वैदिक यन्त्रालय के अधिष्ठाता को अजमेर में भेजनी प्रारम्भ कर दी। बीच बीच में प्रचार हेतु मिन्टगुमरी और गुजरांवाला भी गए। जहाँ-जहाँ कालेज विभाग वाले माँस-भक्षण का बखेड़ा शुरु करते, उनके तोड़ के लिए पं० लेखराम को वहाँ-वहाँ जाना पड़ता। भवानी और करनाल भी इसी समय उन्हें जाना पड़ा। इसी वर्ष १८९५ में पं० जी को प्रचारार्थ सियालकोट, मलेरकोटला, रोपड़ भेजा गया। उन के श्रोताओं में मुसलमान भारी संख्या में होते थे और तर्क-संगत युक्तियां सुन कर कहा करते थे, "सभान अल्ला" "वारक अल्ल्ला"।

पं० जी १५ मई १८९५ को कहूटा पहुँचे। उन्हें सन्तानोत्पत्ति की आशा थी। १८ मई को उन के घर पुत्र रत्न की उत्पत्ति हुई, जिसका नाम सुखदेव रखा गया। आर्य समाज के प्रचार की इतनी लगन थी कि चार दिन पश्चात् आर्य पथिक प्रचार-यात्रा पर निकल पड़े। २३ और २४ मई को गुजरखाँ तथा तक्का में प्रचार करते हुए, भेरा आर्य समाज के उत्सव में पहुँचे और युवकों को प्ररित करने के लिए व्याख्यान दिया। व्याख्यान का विषय था खूब व्यायाम करो, खूब खाओ और सेहत बनाओ। "जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खा कर कुछ पचा नहीं सकते और जब काफी भोजन नहीं खाते तो बल कहाँ से आये।" आर्य पथिक खाते भी खूब थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं कि लालामूसा में जब भोजन करने बैठे तो पं० जी १७ पूरियाँ खाकर उठे और कहने लगे कि हम काम इतना कठिन करते हैं और यदि खूब खाएंगें नहीं तो खूब काम कैसे करेंगे। तत्पश्चात् आर्य पथिक मिन्टगुमरी, सोबी और कवेटा में व्याख्यान देते रहे। उन के छोटे भाई तोताराम की मृत्यु १२ जून, १८९५ को हो गई, किन्तु आर्य वीर वेद-प्रचार में लगा रहा। अनुज भ्राता की मृत्यु का शोक तो था, किन्तु दीनानगर आर्य समाज वालों ने मौलवी अकबर अली से शास्त्रार्थ रख दिया था। उन्हें वैदिक धर्म प्यारा था। कहूटा जाने के स्थान पर वे दीनानगर पहुँचे और ऐसे व्याख्यान दिये कि मौलवी साहब शास्त्रार्थ में मैदान छोड़ कर भाग गए। उनके व्याख्यान के विषय थे; वैदिक धर्म की श्रेष्ठता, सन्ध्या की आवश्यकता, सच्चाई की मज़ूबत चट्टान। दीनानगर आर्य समाज के मन्त्री ने वर्णन किया, "किसी उत्सव में इतनी जनसंख्या उपस्थित नहीं हुई और पं० लेखराम जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदय में जो सहानुभूति आर्य समाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला अवसर है। पंडित जी के व्याख्यानों के पश्चात्

यहां संध्या पुस्तकों की बड़ी मांग हो रही है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, कोई भी आर्य समाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दु न होगा, जो अब भी दो घण्टे व्यय करके दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।"

दीनानगर के पश्चात् आर्य पथिक अमृतसर, खन्ना, मुरादाबाद, शिमला, धर्मशाला, अमृतसर, लाहौर , लुधियाना, रोपड़, पटियाला में वैदिक शंख-नाद करते हुए मार्च १८९६ को अजमेर पहुँचे। अजमेर मुसलमानों का गढ़ है और "ख्वाज़ा चिश्ती" की दरगाह के लिए प्रसिद्ध है। दूर दूर से मुहम्मदी लोग अपनी मन्नतें मनवाने के लिए तशरीफ लाते हैं। आर्य पथिक ने जब कब्र पूजा का खण्डन किया तो मुसलमान लोग भड़क उठे और बहुत से आर्य समाजी भाग गए। उन्होनें सुन रखा था कि विधर्मी के धर्म-मन्दिर से ३० कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने धर्म के समर्थन में व्याख्यान कर सकता है। उन्होंने दरगाह के द्वार से ३० कदम गिने और एक पुल पर खड़े हो कर वैदिक धर्म-प्रचार शुरु कर दिया। मूर्ति-पूजा, कब्र-पूजा का डंके की चोट कर खण्डन करते रहे। किसी की हिम्मत न हुई कि उन के धारा प्रवाह व्याख्यान में विघ्न डाल सके। कुछ देर बाद कुछ हिन्दु भाई तमाशा देखने गए कि पं० लेखराम - जिन्दा है या मारा गया। उन के आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि बड़े बड़े मौलवी और मुहम्मदी भाई उन का भाषण बड़े प्रेम और श्रद्धा से सुन रहे थे। जून १८९६ में पं० लेखराम जी, अपनी पत्नी सहित कोट किशन चन्द में एक किराए के मकान में रहने लगे और ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र लेखन का काम पुनः शुरु कर दिया।

आर्य समाज फैलाने के ७ साधन - आर्य पथिक पं० लेखराम जी का हस्तलिखित नोट स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को प्राप्त हुआ, जिसके अनुसार उन्होंने सारे भारत वर्ष को आर्य बनाने के लिए सात साधन लिखे हैं और आशा व्यक्त की है कि यदि इन निम्नलिखित सात साधनों को क्रियान्वित किया जाए तो सारा भारत-वर्ष आर्य राष्ट्र बन सकता है -

१) विधवा विवाह या कोई और साधन जिससे भविष्य में स्त्रियाँ मुसलमान वा ईसाई न हों।

२) शुद्धि फण्ड जिसके अनुसार सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म में आ सके।

३) वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तैयार करना।

४) बाल विवाह को रोकना।

५) पुस्तक प्रचार। प्रत्येक भाषा में और विज्ञान की वे बातें, जो वेद विरुद्ध हैं, उन पर विचार करना।

६) साधु कम हों और उपदेशक बन कर वर्तमान साधु धर्म का पालन करें।

७) दान की व्यवस्था ठीक करना ।

आर्य की दिन चर्या - अप्रैल १८९६ में पं० लेखराम जी ने अपनी दिन चर्या के सम्बन्ध में निम्न प्रकार लिखा है । इस से पता चलता है कि एक आदर्श आर्य की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए ।

१) सवा घण्टा रात रहने पर उठ कर शौच के लिए जाना, फिर दन्त धावन, स्नान तथा सन्ध्या करना और सूर्य उदय होने पर अग्नि होत्र करना ।

२) वेद पाठ एक घण्टा, कुरान, तौरेत, इन्जील का स्वाध्याय एक घण्टा वा अन्य मतों सम्बन्धी पुस्तकादि । ग्रन्थ निर्माण का कार्य ११ बजे तक ।

३) १२ से २ बजे तक - भोजन, विश्राम, गृहस्थ के कार्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना ।

४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषत: ऐतिहासिक विद्या सम्बन्धी ।

५) मल-त्याग, शौच, संध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म का उपदेश । अग्नि-होत्र, भोजन, घर का प्रबन्ध - ६ से ९ बजे तक ।

६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार । सोने से पहले हाथ, मुँह, पैर धोकर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना । रात के दस बजे सोना । पूरे छ: घण्टे सोना, कम बिल्कुल नहीं । एक चारपाई पर न सोना चाहिए, ऋतुगामी होना चाहिए ।

७) मल-त्याग के लिए अधिक समय नहीं बैठना चाहिए, इस से बावासीर हो जाती है ।

८) खाना जहाँ तक हो सके चबा कर खाना, ३२ बार यदि एक ग्रास चबाया जाए तो कोई बिमारी नहीं होती । खाने के पश्चात् तत्काल ही लघुशंका के लिए बैठना चाहिए क्योंकि इससे मसाने की बिमारी नहीं होती ।

९) प्रात: उठकर अपने अनुसार आध पाव बासी पानी नाक पकड़ कर पीना, जिससे अजीर्ण कभी नहीं होता ।

१०) पाजामें के अन्दर लंगोट रखना चाहिए और लंगोट समेत नहाना चाहिए । लघुशंका के पश्चात् पानी वा मिट्टी से शुद्धि करनी चाहिए जिस से शरीर अपवित्र न हो । व्यर्थ क्रोध नहीं करना चाहिए, कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना चाहिए और दीन-ए-इस्लाम की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न, और इसी प्रकार दूसरे मतों का भी, और वैदिक धर्म का प्रचार ।

ईश्वर । मेरी इस इच्छा को आप पूर्ण कर दो।

पं० लेखराम "आर्य मुसाफिर"

अध्याय-१०

आर्य पथिक चलते रहे

पथिक का काम रुकना नहीं, चलना है, ठहरना नहीं, आगे बढ़ना है। पिता की मृत्यु हो गई, छोटे भाई स्वर्ग-सिधार गए और इकलौते प्यारे पुत्र सुखदेव की मृत्यु हो गई, किन्तु आर्य पथिक रुके नहीं शोक से विचलित नहीं हुए। वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए पूर्ववत् कार्य में जुटे रहे। भीषण से भीषण कष्ट की वेला में भी उन्होंने अपना धैर्य्य नहीं खोया। १८९६ की एक घटना है। पं० लेखराम जी प्रचार कार्य से अभी लौटे ही थे कि आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ला० मुन्शी राम जी ने कहा कि पं० जी! मुस्तफाबाद में पाँच हिन्दु मुसलमान बनने जा रहे हैं, मैं वहाँ हकीम सन्तराम को भेज देता हूँ, आपका पुत्र बिमार है, आप घर जाएं। पं० जी ने उत्तर दिया, "नहीं, वहाँ तो मेरा ही जाना ठीक है। मुझे अपने एक पुत्र से जाति के पाँच पुत्र अधिक प्यारे हैं।" आर्य पथिक जालन्धर में ठहरने के स्थान पर मुस्तफाबाद चले गए और अपने लक्ष्य की पूर्ति की। डा० गंगाराम ने लड़के का बहुत उपचार किया, किन्तु सवा साल का बच्चा बच न सका। हिन्दु जाति के पाँच पुत्रों के लिए धर्म वीर ने अपने पुत्र का बलिदान कर दिया। गुरु गोबन्दसिंह जी के चार पुत्र थे, उन्होंने चारों पुत्र देश और धर्म की वेदी पर न्यौछावर कर दिए। पं० लेखराम जी ने अपना इकलौता पुत्र आर्यत्व हेतु बलिदान कर दिया और तिल मात्र भी विचलित नहीं हुए। एक भजन के ऐसे शब्द हैं :-

लड़का तेरा बिमार था, शुद्धि को तू तैयार था।
मरने का पहुंचा तार था, पढ़ कर के तार यूँ कहा।
लड़का मरा तो क्या हुआ, दुनियां का है यह सिलसिला।

आर्य पथिक ने ज़िला सियालकोट के पसरूर नामक स्थान पर "वैदिक धर्म की श्रेष्ठता" तथा "सच्चाई की मज़बूत चट्टान" विषयों पर व्याख्यान देकर हिन्दू और मुसलमान श्रोताओं का मन जीत लिया। १८९६ में आर्य समाज शिमला के वार्षिक उत्सव में उन्होंने व्याख्यानों द्वारा श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर दिया और नमाज़ से सन्ध्या को श्रेष्ठ बताया। इन्हीं दिनों पं० जी की पुस्तक "हुज्जते इस्लाम" द्वारा कादियानी की मत-धारा पर ऐसा कुठारा घात करते हुए प्रमाण दिए कि श्रोता आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने प्रमाणित किया कि कुरान की आयतों के अनुसार

"मैं खुदा का नूर हूँ।" जब ईश्वर की रची हुई सृष्टि ईश्वर का ही नूर है तो मिर्ज़ा जी खुदा से अलग कैसे हो सकते हैं ? श्रोताओं में एक नवयुवक जो मुसलमान समुदाय से सम्बन्ध रखता था। चिल्ला कर कह उठा, काफिरों को काटने वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूल। व्याख्यान करते हुए निडर एवं सत्य पर अडिग रहने वाले आर्य पथिक ने जिस ओर से ये शब्द सुने थे, उसी ओर आँखें घुमा कर सिंह-नाद करते हुए कहा, "बुज़दिल! मुझे तलवार की धमकी देता है। मैनें अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो, मैं जान हथेली पर लिए फिरता हूँ।"

महात्मा मुन्शीराम जी जो उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान भी थे, लिखते हैं, "सारे हाल में सन्नाटा छा गया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं न की।" ऐसे निर्भीक प्रचारक थे हमारे वीर आर्य पथिक, जिन्होंने ऋषि दयानन्द के जीवन की घटनाएं एकत्रित करते हुए अपने गुरु के मिशन को पूरा करने के लिए मर मिटने की ठान ली थी। ऋषि दयानन्द के विरोधियों ने उन पर पत्थर फैंके, मार डालने की धमकियां दीं, उन को अपमानित किया गया, उन पर विषधर सांप फैंके गए, उन को नदी में डुबोने का प्रयास किया गया, १७ बार उन को मारने के लिए ज़हर दिया गया, वैदिक धर्म का मण्डन और विरोधी मतों का खण्डन बन्द करने के लिए उन को कई प्रकार के प्रलोभन दिये गए, किन्तु सत्य पथ के अनुयायी ऋषि दयानन्द अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए निरन्तर आगे बढ़ते रहे और कह दिया, "यदि मेरी अँगुलियों की मोम-बत्तियां बना कर भी जला दिया जाए तो मैं सत्य-वचन से पीछे नहीं हटुँगा।"

२८ अगस्त १८९६ को पं० जी के प्रिय पुत्र सुखदेव की मृत्यु जालन्धर में हुई। उन्होंने अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी जी को कहूटा में छोड़ा और पूर्व-निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार दो दिनों के पश्चात् आर्य समाज वज़ीराबाद के उत्सव में पहुँच गए। श्रोताओं में महात्मा मुन्शीराम जी भी उपस्थित थे। अपने व्याख्यान में "ईश्वर के स्वरूप" का ऐसा चित्र खींचा कि मुसलमान श्रोताओं के सिर हिलने लगे। ईश्वर के मुकाबले में झूठे इस्लाम की ऐसी पोल खोली कि सुनने वाले भाई हक्के-बक्के रह गए। आर्य पथिक के भाषणों ने सभी का दिल जीत लिया। श्रोताओं में मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादियानी का चेला नूरउद्दीन भी उपस्थित था। व्याख्यान तो बड़ा दत्त-चित्त होकर सुनता रहा, किन्तु बाद में रात के अन्धेरे में अपने मत के लोगों को कहने लगा-

"अरे बेवकूफों, तुम सब बकरों की तरह दाड़ी हिला रहे थे और यह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चल रहा था।"
यह सुन कर महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने सब से प्रिय प्रचारक पं॰ लेखराम जी को बधाई दी, जिन्होंने अपने व्याख्यानों से मुसलमानों को भी कायल कर दिया।

वजीराबाद में धूम मचाने के पश्चात् आर्य पथिक एक विचित्र शास्त्रार्थ में भाग लेने हेतु मुकेरियाँ पहुँचे। वहाँ किसी पौराणिक पंडित ने महाभारत के एक श्लोक को वेद का मन्त्र बतलाया था। सनातनी और आर्य भाईयों के इस विषय में मत-भेद के कारण आर्य पथिक एवं महात्मा मुन्शीराम दोनों वहाँ पहुँचे। शर्त यह थी कि यदि सनातन धर्म सभा के पंडित जी वह श्लोक वेद में लिखा प्रमाणित करें तो आर्य समाज के प्रधान ५०० रुपया जुर्माना देंगे और यदि वेद में लिखा प्रमाणित न कर सकें तो सनातन धर्म सभा के प्रधान आर्य समाज के प्रधान को ५० रुपये जुर्माना देंगे। स्थानीय लोग चिन्तित थे कि कहीं पं॰ लेखराम जी अपने अक्खड़पन से बना बनाया खेल खराब न कर दें। उन की इच्छा थी कि इस शास्त्रार्थ में महात्मा मुन्शीराम जी भाग लें। शास्त्रार्थ के नियमानुसार यही उचित होता है कि अपने पक्ष का सब से विद्वान् आदमी शास्त्रार्थ मंच पर बैठे। समय आने पर पं॰ जी ने स्वयं ला॰ मुन्शीराम जी का नाम शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत किया और मनाने पर भी न माने, मुस्करा कर के कहने लगे, "... यह आप का काम है। यदि मैं बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपोर्ट कौन लिखेगा।" यह कह कर पं॰ जी ने स्वयं पकड़ कर ला॰ मुन्शीराम को शास्त्रार्थ हेतु कुर्सी पर बैठा दिया। शास्त्रार्थ में जीत आर्य समाज की हुई, क्योंकि श्लोक वेद से नहीं अपितु महाभारत से लिया गया था।

मुकेरियाँ से आर्य मुसाफिर जगराओं में पहुँचे जहाँ इन्होंने शास्त्रार्थ में पौराणिकों एवं मुसलमानों को करारी हार दी। सितम्बर, १८९६ के अन्त में आर्य समाज झङ्ग में वेद प्रचार करते हुए उस आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में ज़ोरदार व्याख्यान दिए। उनके तर्क-पूर्ण व्याख्यान को सुनने भारी संख्या में वे लोग भी आया करते थे, जो आर्य समाज के सदस्य नहीं थे। २७ सितम्बर को आर्य समाज अड्डा होशियारपुर के वार्षिकोत्सव में पहुँचे और फिर लाहौर, लुधियाना, शरकपुर, भागोवाला (जिला गुरदासपुर) में वेद प्रचार करते हुए, आप ने कई लोगों को आर्य समाज के सदस्य बनने की प्रेरणा दी। भागोवाला में आप ने एक नवयुवक बी॰ए॰ के साथ 'नियोग विषय' पर शास्त्रार्थ कर के उसे बुरी तरह परास्त किया। उन की तर्क-शाक्ति का लोहा मुसलमान भाई भी मानते थे। श्रोताओं में बैठे कुछ पढ़े-

लिखे मुसलमान और मौलवी भी कह उठे, "सुबहान अल्लाह । क्या ताक़स मुनाजरा है । शेर के पंजे में फंसा हुआ है ।" आर्य समाज के अली और व्याख्यान जगत के शेर ने तुर्की टोपी वाले नवयुवक को ऐसे हराया कि तालियों से सारा वातावरण गूँज उठा ।

जनवरी, फरवरी १८९७ में पं० जी जम कर लाहौर रहे और ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र के लेखन का कार्य करते रहे । उस समय लाहौर में आप के कई व्याख्यान हुए । महात्मा मुन्शीराम जी लिखते हैं कि पूज्य पं० जी का अन्तिम व्याख्यान उन्होंने लाहौर में ही सुना । अपनी प्रचार-यात्रा में आर्य पथिक की अंतिम यात्रा आर्य समाज मुलतान में थी और उन के जीवन का अन्तिम व्याख्यान ४ मार्च १८९८ को हुआ । उन्होंने अपने भाषणों द्वारा विरोधी-मत वालों का तर्क-पूर्वक खण्डन किया । वे स्वयं लिखते हैं, "मेरे यहाँ चार व्याख्यान हुए, खूब रौनक रही ।"

उन्होंने १८८० में आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण की और इस प्रकार वे १८८० से १८९८ तक १९ वर्ष तक आर्य समाज की सेवा में कार्यरत्त रहे । ऋषि दयानन्द जी के १८८४ में अजमेर में दर्शन किए और पुलीस की नौकरी छोड़ कर दयानन्द के वीर सैनिक बन गये । १८८४ से १८९७ तक १२½ वर्ष पूर्ण रुपेण आर्य समाज को समर्पित किए । अनेक विपदाएं थीं, किन्तु मार्ग में आने वाली बाधाओं से कभी घबराए नहीं, कभी विचलित नहीं हुए । धर्म को बचाने के लिए सदा तत्पर रहते थे । जब उन्हें पता चला कि लुधियाना जिला के पायल नामक गाँव का एक हिन्दु अपना मत त्याग कर मुसलमान बनने जा रहा है, तो आर्य पथिक शीघ्र रेलमार्ग द्वारा चल पड़े । पायल में गाड़ी रुकती नहीं थी, इसलिए बिस्तर सहित चलती गाड़ी से छलाँग लगा दी । चोटें आईं किन्तु लेखराम ने उस भाई को हिन्दु धर्म त्यागने से बचा लिया । अब पायल गाँव में पं० लेखराम जी द्वारा स्थापित आर्य समाज उस वीर बलिदानी का स्मृति-चिह्न है और आर्य भाईयों के लिए गौरव-स्थली है ।

अध्याय-११
पं० लेखराम जी द्वारा लिखे ग्रन्थ

आर्य पथिक ने अपने भरसक प्रयत्नों से लगभग १० वर्ष के तप और त्याग से ऋषि दयानन्द के जीवन की घटनाओं सम्बन्धी लगभग ३००० पृष्ठों की सामग्री एकत्रित की, किन्तु असमय ही बलिदान हो जाने पर वे इस जीवन-चरित्र को पूरा न कर सके । उन द्वारा एकत्रित घटनाओं के आधार पर ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को ला० मुन्शीराम जी के आदेशानुसार श्री आत्मा राम अमृतसरी ने पूरा किया और इस का सम्पादन किया । आर्य पथिक द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची निम्न-लिखित है :-
यह सारी सामग्री उर्दू में लिखी हुई थी। श्री पं. रघुनन्दन सिंह निर्मल ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया तथा आर्य प्रतिनिधी सभा पंजाब ने इस अनुवाद को पहली बार प्रकाशित किया। बाद में अन्य प्रकाशकों ने भी इसे प्रकाशित किया।
'कुलियात आर्य मुसाफिर' पं. लेखराम जी की प्रसिद्ध पुस्तक है जो वास्तव में पण्डित जी की कुछ विशेष कृतियों ईक्टों व लेखों का संग्रह ही है। इस आर्य पार्थक द्वारा लिखित सभी पुस्तकों की सूची नीचे दी जा रही है-
१. आर्य, हिन्दू और नमस्ते की तहकीकात- इसका हिन्दी अनुवाद पं. राम विलास शर्मा ने 'आर्य हिन्दू और नमस्ते की खोज' नाम से किया। जो 'भारतोद्धारक' मासिक पम (मेरठ) के १८९७ ई. के अंको में धारावाही प्रकाशित हुआ। बाद में अलग पुस्तक रूप में वैदिक प्रचार फण्ड मेरठ अलग पुस्तक रूप में वैदिक प्रचार फण्ड मेरठ (१८९७ ई.) तथा वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद (१९१९ ई.) में हुआ।
२. रिसाला ए नवेद ए बेवगान (विधवा स्त्रियों की समस्या पर १८८३ ई.)
३. स्त्री समाज में शान्ति फैलाने का उपाय
४. स्त्री शिक्षा के उपाय। (हिन्दी अनुवादक श्री शिवचकण लाल सारस्वत)
५. कुमारी भूषण
६. स्त्री शिक्षा (१८८३ ई.)
७. तारीखं-ए-दुनिया (हिन्दी अनुवाद 'सृष्टि का इतिहास' तथा 'ऐतिहासिक निरीक्षण' नाम से प्रकाशित हुए। सरस्वती मन्त्रालय प्रयाग से १८९४ में पहला संस्करण प्रकाशित हुआ। बाद में प्रकाशकों ने भी छापा)
८. भारत गौरवादर्श (हिन्दी अनुवादक श्री सूर्यप्रसाद मित्र)

९. नुस्खा ए खब्त ए अहमरिया -('सुरमा ए चश्म आ़रिया' पुस्तक के उत्तर में लिखा गया ग्रन्थ।

१०. तक़जीब ए बुराहीन ए अहमदिया (१८९१ ई.)

११. रिसाला ए जिहाद यानी दीन ए मुहम्मदी की बुनियाद (१८९२ ई.)

१२. लिक्चर 'इशायत ए इस्लाम' पर (१८९३ ई.)

१३. हुज्जतुल इस्लाम (१८९६ ई.) (हिन्दी अनुवादक पं. बुद्धीदत्त शर्मा ने 'यवन मत समीक्षा' नाम से किया)

१४ अबताले बशारते अहमदिया

१५. रद्दे खिलअते इस्लाम

१६. आइना ए शफ़ाअत इस्लाम (क्षमा दर्पण)

१७. क्रिशिचयन मत दर्पण- (श्री राम विलास शर्मा द्वारा किया हिन्दी अनुवाद १८९६ ई. में प्रकाशित हुआ)

१८. आइना ए इंजील (इंजील की हकीकत) (१८८८ ई.)

१९. श्री कृष्ण का जीवन चरित्र

२०. सदाकत ऋग्वेद

२१. सुबूते तनासुख

२२. पुराण किसने बनाए ? (१८९१, १८९४, १९०६ में इस पुस्तक के विभिन्न हिन्दी अनुवाद कई प्रकाशकों ने प्रकाशित किया। `Who Wrote the Puranas' नाम से इस अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ।

२३. मूर्ति प्रकाश (१८८८ ई.)

२४. पतितोद्धार (हिन्दी अनुवाद-मुन्शी ज़गदम्बा प्रसाद, १९००ई.)

२५. इतरे रुहानी

२६. सांच को आँच नहीं (श्री शिवनारायण प्रसाद कायस्थ द्वारा लिखित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती की महिमा' का उत्तर)

२७. अन्त्येष्टि कर्म आवश्यक है? (मुर्दा अवश्य जलाना चाहिए का दूसरा नाम, १८८८ ई.)

२८. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित

२९. सदाकते इल्हाम (ए. ओ. हयूम द्वारा लिखित पुस्तक 'दलाएल अगलाते इल्हाम' का उत्तर, १८८६ ई.)

३०. निजात की असली तारीफ (मोक्ष का वास्तविक लक्षण)

३१. नियोग का मन्तव्य

३२. सत्य धर्म का सन्देश

३३. सत्य सिद्धान्त और आर्य समाज की शिक्षा

अध्याय-१२

जीवन की प्रेरणादायक कुछ घटनाएं

महापुरुषों के जीवन की घटनाएं किसी भी जाति के लिए प्रेरणा-स्रोत होती हैं । पं॰ लेखराम जी के जीवन की अनेक घटनाएं उन के बहुपक्षीय व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हुई पाठकों के लिए प्रेरणाप्रद एवं शिक्षाप्रद सिद्ध हो सकती हैं । उनके जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन नीचे किया गया है -

(१)

पं॰ लेखराम के जीवन की पहली घटना यह है कि इनका जन्म १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के एक वर्ष पश्चात् १८५८ में हुआ । इस पीढ़ी में जन्म लेने वाले अधिकांश व्यक्ति देश-प्रेमी एवं धर्म-प्रेमी हुए । ला॰ मुन्शीराम का जन्म १८५७ में हुआ । आर्य समाज के क्षेत्र में इन दोनों की जोड़ी प्रसिद्ध है । दोनों ने आर्य समाज के लिए अपने व्यवसाय को छोड़ दिया, दोनों व्याख्यानों एवं लेखों द्वारा वेद प्रचार करते रहे । एक "कल्याण पथ के पथिक" बने, तो दूसरे "आर्य मुसाफिर" । एक ने पेट में छुरा खा कर बलिदान दिया तो दूसरे ने अब्दुल रशीद की पस्तौल से गोली खा कर प्राणों का त्याग किया । एक ने दयानन्द की विचार-धारा को फैलाने के लिए तन, मन, धन पिता, भाई, पुत्र सब को न्यौछावर कर दिया तो दूसरे ने दयानन्द के सपनों को साकार करने के लिये गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की, अपने दोनों पुत्रों को वहाँ प्रविष्ट किया। अपनी जालन्धर वाली कोठी बेच कर सारा पैसा गुरुकुल को दान कर दिया और गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर अपना सब कुछ दान कर के पूर्णाहुति देकर कहा, 'ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।'

(२)

अभी पं॰ लेखराम ज़ी आर्य समाज में प्रविष्ट नहीं हुए थे । उस समय गीता, रामायण, कुरान एवं अन्य धर्मों की सभी प्रकार की पुस्तकें पढ़ते रहते थे । अभी तक इनका मन अस्थिर और खाना-बदोश था । यह पूछे जाने पर कि यदि इस्लाम मत आप को प्रभावित कर गया तो क्या वे मुसलमान बन जाएंगें, पं॰ जी ने तपाक से उत्तर दिया, "बेशक, अगर दस घड़े रखें हो और यह मालूम न हों कि ठंड़ा पानी किस में है त़ो जब तक थोड़ा-थोड़ा पानी सब में से न पिया जाए तब तक कैसे पता

चल सकता है कि किस घड़े का पानी ठंडा एवं मीठा है । इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पहचान करके ही पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म कौन सा है ।" पं॰ जी जीवन भर सत्य पथ के पथिक रहे और धर्म को धर्म तथा अधर्म को अधर्म कहते रहे ।

(३)

बचपन से ही पं॰ लेखराम जी तीक्ष्ण-बुद्धि वाले और हाज़िर जवाब थे । इन के अध्यापक मुन्शी तुलसीदास जी का कथन है कि पाठशाला के निरीक्षण के समय निरीक्षक महोदय ने लेखराम जी को सब से मेधावी छात्र घोषित करके विशेष रूप से पुरस्कृत किया । बालक क्लास का मनीटर बन गया और पढ़ाई से अधिक रुचि बेतुकी कविता लिखने में लेने लगा । आगे चल कर यही मेधावी छात्र अपने समय का सर्वश्रेष्ठ वक्ता एवं शास्त्रार्थी बना ।

(४)

बचपन से ही लेखराम की संकल्प-शक्ति बड़ी दृढ़ थी और जिस काम को करने की ठान लेते थे, उसे पूरा कर के ही छोड़ते थे । अभी इनकी आयु ११ वर्ष की थी कि इनकी चाची श्रीमती गणेशदेवी ने एकादशी का व्रत रखा । बालक लेखराम ने भी व्रत रखने का संकल्प किया और चाचा चाची जी के बहुत समझाने पर भी कि यह व्रत बहुत कठोर है, पूरी मर्यादा अनुसार व्रत का पालन किया । दृढ़ संस्कार उन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले ।

(५)

१५ वर्ष की आयु में जब अभी लेखराम जी अपने चाचा गण्डाराम जी के साथ सुआवी में रहते थे कि एक धार्मिक सिख सिपाही की संगत में गए । उन्होंने गुरुमुखी लिपी में लिखी गीता का अध्ययन करना आरम्भ कर दिया । प्रातः काल ब्रह्म-मुहूर्त में उठ कर स्नानादि से निवृत्त हो कर समाधि लगाए चारपाई पर बैठे थे कि देखते देखते खटिया से नीचे आ गिरे । सिर नीचे और पाँव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु लेखराम की समाधि टूटी नहीं । बचपन से ही प्रभु-भक्ति एवं प्रभु-मिलन की चाह बलवती हो गई थी । स्कूल छोड़ा, नौकरी छोड़ी किन्तु प्रभु-भक्ति को कभी नहीं छोड़ा । दिन में दो बार संध्या अवश्य करते थे ।

(६)

जिज्ञासु लेखराम को सत्य की खोज थी और कई धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन एवं धार्मिक पुरुषों का सत्संग उन की पिपासा न बुझा सका । १७ मई १८८० को

उन्होंने ऋषि दयानन्द के दर्शन किए तो जीवन की सारी भटकन समाप्त हो गई और मन के सब संशय दूर हो गए। ऋषि दयानन्द की अमृत-रूपी उपदेश वर्षा ने जन्म जन्म की प्यास बुझा दी। ऋषि ने उन्हें अन्तिम उपदेश दिया कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह मत करना। पं० लेखराम जी दयानन्द के ऐसे अनुयायी निकले कि २५ वर्ष के स्थान पर ३५ वर्ष की आयु में लक्ष्मी देवी से विवाह किया, जिस की आयु उस समय १६ वर्ष थी।

(७)

ऋषि दयानन्द की सहसा मृत्यु ने पं० लेखराम पर बहुत बड़ा उत्तरदयित्व छोड़ दिया था। वेद-प्रचार करना, व्याख्यान देना और पुस्तकें लिखना उनका एक काम था और विरोधियों के मन-घड़न्त प्रश्नों का उत्तर देना उनका दूसरा काम था। कादियाँ के मिर्ज़ा जी अपने आप को खुदा का पैगम्बर मानते थे और उन्होंने घोषणा की कि यदि कोई उन के "ईश्वरीय चमत्कार" देखना चाहे तो कादियाँ में आकर एक वर्ष तक रहे। यदि वह चमत्कार न दिखा सके तो दूसरे व्यक्ति को २४०० रुपया दण्ड के रूप में देंगे। पं० लेखराम जी ने कादियाँ जा कर रहने का प्रस्ताव तो स्वीकार कर लिया, किन्तु शर्त यह रखी, कि जिस दिन से मिर्ज़ा जी सरकारी कोष में २४०० रुपया जमा करवां देंगे उसी दिन से पं० जी कादियाँ आ कर रहने लगेंगे। दोनों में पत्र व्यवहार होता रहा किन्तु परिणाम कुछ न निकला। एक बात साफ हो गई, कि कोई दैवी चमत्कार सिद्ध न हो सका।

(८)

पं० लेखराम जी बहुत तेज़ ज्वर से पीड़ित थे और जालन्धर में ला० देवराज जी के यहाँ ठहरे हुए थे। अचानक एक ऐसी घटना घटी कि पं० जी बहुत दुखी हुए। एक शरारती बालक ने उस गमले को जूते से पीटना शुरु कर दिया जिस पर "ओ३म्" लिखा था। पं० जी बहुत दुखित हुए और नटखट बालक के पीछे भागे किन्तु वह हाथ न आया। पं० जी ने शीघ्र माहत्मा मुन्शीराम और ला० देवराज जी को बुलवाया और कहने लगे कि ईश्वर जानता है, वह एक पल भी वहाँ नहीं रुकेंगे। जब कारण पूछा गया तो सिसकते होठों से ला० देवराज को कोसते हुए कहने लगे कि आप कैसे आर्य समाजी हो। यदि गमले पर "ओ३म्" लिखवाने का शौक है तो गमला कहीं ऊपर तो रखवा सकते थे, जहाँ नटखट बालकों का हाथ न पहुँचे। उन का अन्दर बाहिर एक था और अपने सिद्धान्तों को लगने वाली कोई भी ठेस वे सहन नहीं कर सकते थे।

(९)

जब आप पुलीस में सार्जेण्ट थे तो सरकारी काम के लिए कहीं पैदल जाना था । वे टांगे पर चढ़ गए और रास्ते में जब अँग्रेज अधिकारी ने पूछा कि आप पैदल जाने के स्थान पर टांगे पर क्यों जा रहे हैं तो हाज़िर जवाब लेखराम बोले, पैसे अपनी जेब से व्यय करके सरकारी प्रतिष्ठा बना रहा हूँ । यदि पैदल जाता तो सरकार की मान हानि होती । इस घटना से पं० जी की सूझ-बूझ का प्रमाण मिलता है तथा अँग्रजों की तंग-दिली सामने आती है, जो यह नहीं चाहते थे कि काले रंग के भारतीय, गोरे अंग्रजों की बराबरी करें ।

(१०)

यह घटना उस समय की है जब पं० लेखराम जी अपने दूसरे चार साथियों सहित भाई रंजी की धर्मशाला में पेशावर में रहते थे । पं० जी स्वयं और इन के सभी मित्र अद्वैतवाद में विश्वास करते थे, किन्तु ऋषि दयानन्द का साहित्य पढ़ कर पं० जी आर्य समाजी हो गए और वार्तालाप करके बाकी तीन को भी आर्य-समाजी बना लिया । पांचवां मित्र ब्रह्म समाजी ही रहा । पं० जी ने बड़ी माथा पच्ची की किन्तु उनका मित्र सन्तुष्ट न हुआ । अन्त में पं० जी ने एक ऐसा तीर चलाया जो ठीक ठिकाने पर जा लगा । वह कहने लगे, "कम्बख्त तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी खातिर ही आर्य बन जा । मित्र मण्डली तो न टूटेगी ।" इस प्रकार पांचवा मित्र भी आर्य समाजी बन गया । जहाँ शास्त्र काम न कर सके , वहाँ पं० जी तर्क के प्रयोग से दूसरों को अपनी ओर जीत लिया करते थे । शास्त्रार्थ में भी उन की तर्क-शक्ति खूब रंग लाती थी ।

(११)

अभी पं० लेखराम जी पुलिस-विभाग में थे और धर्मोपदेश पत्रिका के संवाद दाता का कार्य करते थे । इन्होनें "शराब खानाखराब" विषय पर एक ऐसा महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया कि पुलिस के सभी अधिकारियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । एक सैनिक अधिकारी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी सारी "कम्पनी" में मद्य-निषेध कर दिया ।

(१२)

ऋषि दयानन्द के अनुयायी पं० लेखराम को यह गौरव प्राप्त है कि इन्होंने स्त्री-शिक्षा पर "कुमारी भूषण" नामक प्रथम पुस्तक लिखी । वे स्त्री शिक्षा के प्रमुख कर्णधार थे । इस पुस्तक में पं० जी ने यह सिद्ध किया है

शिक्षा ही कुमारी का सच्चा भूषण है।
'विद्या समं नास्ति शरीर भूषणाम्'

विद्या के समान संसार में और कोई आभूषण नहीं। यदि माता-पिता अपनी बेटियों को शिक्षा-रत्न प्रदान करें तो इस से बड़ा और कोई दूसरा भूषण नहीं। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य आर्य समाज ने किया है, वह और किसी अन्य संस्था ने नहीं किया।

(१३)

पं० लेखराम जी स्त्री अपमान को कभी सहन नहीं कर सकते थे। एक बार एक धनी व्यक्ति ने किसी स्त्री को कठोर शब्द कहे। पं० जी उस पर टूट पड़े और कहने लगे, "तुम आर्य नहीं हो, अनार्य हो। तुम्हें वेदों की पवित्र शिक्षा का ध्यान नहीं है, यदि तुम आर्य होते तो स्त्रियों के प्रति अशोभनीय शब्दों का प्रयोग कभी न करते।"

(१४)

१८९२ की घटना है, आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी प्रचार की दृष्टि से जालन्धर-छावनी पहुँच गए। वहाँ सैनिकों में वेद-प्रचार किया और दो प्रभाव-शाली व्याख्यान दिए। जालन्धर छावनी में वैदिक धर्म के परिवार से पं० लेखराम और महात्मा मुन्शीराम ने फौजियों को आर्य समाजी बना दिया और बहुत से सैनिकों ने मदिरा, माँस सेवन छोड़ दिया।

(१५)

आर्य समाज पेशावर का वार्षिकोत्सव था। पं० लेखराम जी भी वहाँ उपस्थित थे। सरकारी वकील बाबू सुन्दर सिंह आर्य समाज के मंच से आर्य समाज के विरुद्ध कुछ कहना चाहते थे। पं० जी को इस बात की भनक लग गई और वे मंच के पास जाकर उच्च स्वर में गर्ज कर बोले, "यदि कोई उत्सव में विघ्न डालेगा और आर्य समाज के विरुद्ध कुछ कहेगा तो मैं उस का उत्तर दूँगा।" सब ओर सन्नाटा छा गया। सुन्दर सिंह की कुछ बोलने की हिम्मत न हुई।

(१६)

पं० लेखराम जी का अपना आचार व्यवहार बहुत सरल एवं शुद्ध था और आर्य समाज के सदस्यों और अधिकारियों के शुद्ध आचरण के वे पक्षधर थे। आर्य समाज पेशावर के चुनाव में पं० जी भी उपस्थित थे। वे इसी समाज के सदस्य एवं प्रधान भी रह चुके थे। आर्य समाजी भाई बाबू केशवमल को नया प्रधान निर्वाचित

करना चाहते थे। पं० जी ने दुराचार के आधार पर बाबू केशवमल का विरोध करते हुए कहा कि माँस, मदिरा सेवन करने वाला व्यक्ति आर्य समाज का प्रधान नहीं बन सकता। बस फिर क्या था किसी से हिम्मत न हुई कि बाबू केशवमल का नाम प्रस्तुत कर सके। काश ऐसे सत्यवादी, निडर, किसी का लिहाज़ न करने वाले कर्मठ कार्यकर्ता और नेता लोग हमारे समाज में आगे आएं।

(१७)

एक बार पं० जी के चाचा गण्डाराम जी बिमार हो गए। डाक्टरों ने क्षयरोग बतलाया और माँस एवं अण्डा खाने की सलाह दी। अब चाचा था भतीजे का बहुत प्यारा। उन्होंने पं० जी से परामर्श माँगा और आर्य प्रचारक ने अपने चाचा जी को केवल एक पंक्ति का उत्तर दिया, "क्या माँस के बदले में कोई अन्य वस्तु शरीर को शक्ति देने वाली नहीं।" चाचा जी ने इनके परामर्श से माँस-अण्डे का सेवन नहीं किया और बिमारी के पश्चात् लम्बा जीवन भोगा।

(१८)

एक बार पं० जी और जैमिनी जी गाँव कमालिया के पास गाँव जखड़िया में प्रचार हेतु गए। पं० जी ने पीपल के वृक्ष के नीचे गाँवों के लोगों को एकत्रित कर के ईश्वर-अराधना पर लगभग डेढ़ घण्टा प्रचार किया। चार मील पैदल गए और चार मील पैदल चल कर वापिस आए। मार्ग में भुने हुए चने खा कर पेट-क्षुधा को शान्त किया। इसे दयानन्द के प्रति दिवानापन कहें या आर्य समाज के प्रति पागल-पन। पं० लेखराम पर इन दोनों का भूत सवार था।

(१९)

पं० लेखराम जी दोनों समय की संध्या बहुत नियम-पूर्वक किया करते थे। एक बार वह स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ लुधियाना से जगरांव जा रहे थे। मार्ग में हाथ पाँव धोने के लिए पानी न मिला। पं० जी ने बिना हाथ-पैर धोए सन्ध्या कर ली। तत्पश्चात् एक आर्य भाई ने पूछा, "क्या पेशावरी सन्ध्या हो गई।" पं० जी की हाज़िर जवाबी तो लाजवाब थी, बड़ा तार्किक उत्तर देते हुए बोले, "स्नान-कर्म है, हुआ वा न हुआ परन्तु सन्ध्या धर्म है, और उसका न करना पाप है।" कितना उत्तम उत्तर है। कर्म हो या न हो और बात है किन्तु हमें कभी धर्म-विमुख नहीं होना चाहिए। धर्म को कर्म का दास बना कर धर्म-विमुख होना पाप है।

(२०)

कहूटा के उत्सव में कुछ बहनें गा रही थी, अर्शे उतरियां चार किताबां ? पं०

लेखराम जी ने वह गैर-आर्य-समाजी भजन तुरन्त बन्द करवा दिया और उपस्थित लोगों को उपदेश दिया कि चार किताबें या चार वेद आसमान से नीचे नहीं उतरे थे। वेद का ज्ञान सर्व-प्रथम चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुआ। चार ऋषियों से यह वेद का ज्ञान एक ऋषि से दूसरे ऋषि तक आगे चलता रहा। जब लेखन का काम सृष्टि में प्रारम्भ हुआ तो चार वेद लिखित रूप में समाने आए। यह ईश्वरीय ज्ञान ऋषियों द्वारा मानवता के कल्याण के लिए सदैव प्रसारित होता रहा।

(२१)

करनाल आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था। पं० जी की टांग पर एक भयानक फोड़ा था जिस से उनको बड़ा कष्ट था। वे कहने लगे, "क्या यहाँ कोई आर्य डाक्टर नहीं ?" जब उनसे यह पूछा गया कि डाक्टर के आर्य होने या न होने में क्या रहस्य है, तो पं० जी कड़ककर बोले, "खाक आर्य समाज है ? एक आर्य को भी डाक्टर नहीं बना सकती।" उन का कथन था कि जिस आर्य समाज ने डाक्टरों, अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उसने ख़ाक काम किया है। सदा स्मरण रहे कि जड़ों को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है। पं० लेखराम जी के कथन में जितना बल उस समय था, उतना ही बल इस समय भी है। यदि आर्य समाज प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित लोगों को आर्य समाजी नहीं बनातीं तो आर्य समाज का काम निरर्थक है, यदि स्कूल एवं कालेजों के छात्र एवं छात्राए आर्य संस्थाओं में पढ़कर भी आर्य विचार-धारा ग्रहण नहीं करते, तो ऐसी संस्थाओं का कोई लाभ नहीं। यदि आर्य संस्थाओं में कार्यरत अध्यापक एवं अन्य कर्मचारी आर्य समाज की विचार-धारा को अपनाते नहीं और उसे फैलाते नहीं तो ऐसी आर्य संस्थाओं का कार्य खाक समान है। ऐसी तड़प थी उन में।

(२२)

पं० इन्द्र जी स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र थे और उनके घर में पं० लेखराम जी का आना जाना आम था। इन्द्र जी लिखते हैं कि पं० लेखराम जी की दो प्रिय वस्तुएं थी - प्याज़ और पायजामा। वे प्याज़ के गुण पर व्याख्यान देते हुए थकते नहीं थे और कहा करते थे कि जहाँ प्याज़ हो, वहाँ साँप नहीं आता। एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी सायं को धोती पहने हुए थे, इस पर पं० जी कहने लगे, "ईश्वर जानता है लाला मुन्शीराम जी, इस धोती ने ही हमारे देश का नाश किया है। आप धोती न पहना करें।" पं० जी स्वयं पायजामा पहनते थे।

(२३)

पं॰ जी एक बार कमालियां गांव में गए। आर्य समाजी भाई दूध लेकर आए तो पं॰ लेखराम जी ने पूछा कि दूध कहाँ से लाए हो ? पता चला कि बाज़ार से । पं॰ जी ने उन्हें उपदेश दिया कि प्रत्येक आर्य समाजी के घर में गाय होनी चाहिए। आज भी हमारे आर्य भाई सत्संग के पश्चात् "गौ माता की जय" ऐसा जय घोष तो लगाते हैं, किन्तु गाय का पालन नहीं करते । कमालिया गाँव के लोगों की भांति सभी बाज़ार से लेकर दूध पीते है ।

(२४)

पं॰ इन्द्र वाचस्पति जी आर्य मुसाफिर के सम्बन्ध में एक संस्मरण बताते हैं, कि एक बार एक विद्यार्थी ने पूछा कि मन का लक्षण क्या है ? पं॰ जी का उत्तर ऐसा था कि इन्द्र जी जीवन पर्यन्त उसे भूल न सके । उन्होंने कहा, "मन उल्लू का पट्ठा है ।" क्यों कि यदि इसे काबू में न रखो तो यह बड़े अनर्थ करता है । सारे विद्यार्थी हंस पड़े, किन्तु उसको उत्तर ऐसा मिला, जो वे जीवन-भर न भूल पाए। गम्भीर से गम्भीर विषय को सीधी-साधी भाषा में व्यक्त करना पं॰ जी का ही कमाल था ।

(२५)

पं॰ लेखराम जी के जीवन में हठ और नम्रता का सम्मिश्रण था । मुकेरियां आर्य समाज में शास्त्रार्थ था । आर्य भाईयों को डर था कि लेखराम के अखड़पन के कारण कहीं सुरक्षा-व्यवस्था खराब न हो जाए आर्य भाईयों के कथनानुसार ला॰ मुन्शीराम जी जो सभा के प्रधान भी थे, पं॰ जी को कहने लगे कि वे जगरांव आर्य समाज के अधिवेशन में पहुँच जाएं किन्तु वीर लेखराम ने उत्तर दिया, "जाओ नहीं जाता ।" सभा प्रधान को ऐसा मुँह-तोड़ उत्तर केवल आर्य पथिक ही दे सकते थे और जब शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ तो स्वयं पं॰ जी ने महात्मा मुन्शीराम को शास्त्रार्थ वाले आसन पर बैठा दिया और स्वयं नोट लिखने का कार्यभार सम्भाला। जब उनकी बात न मानी जाए तो वे अड़ जाया करते थे, किन्तु उनका हृदय प्रेम एवं नम्रता से भरपूर था । उन के हठ के आगे महात्मा मुन्शीराम जी सदा झुक जाया करते थे, क्योंकि हीरे की कदर एक जौहरी ही जानता है ।

(२६)

पं॰ लेखराम और महात्मा मुंशीराम की जोड़ी बहुत प्रसिद्ध हुई । एक सभा के प्रचारक थे और दूसरे सभा के प्रधान थे । किन्तु उन में कर्मचारी एवं अधिकारी

वाला कोई सम्बन्ध नहीं था । दोनों का आपस में बहुत प्रेम था । पं० इन्द्र जी लिखते हैं कि दोनों का सम्बन्ध भाई-भाई जैसा था । पं० जी अपने खण्डन-मण्डन और शुद्धि सम्बन्धी कठोर भाषणों से प्रसिद्ध थे और इन्द्र जी की ताई को डर रहता था कि पं० जी के कारण कभी भी विरोधियों की ओर से कोई अनिष्ट न हो जाए। इसलिए पं० जी जब भी घर में आते थे तो वे कह देती थी, "आ गई आफ़त" वास्तव में आर्य समाज पर हुए प्रत्येक प्रहार का उत्तर देना इसी आफ़ त का काम था। दोनों मित्र भी थे, भाई-भाई भी थे, प्रचारक भी थे, लेखक भी थे, शास्त्रार्थी भी थे और दोनों ने खूब निभाई । अन्त में दोनों ने बलिदान दिया, एक ने छुरा खा कर और दूसरे ने गोली खा कर । एक कल्याण-पथ का पथिक था तो दूसरा सत्य पथ का पथिक । ठीक ही कहा है -

यह दुनियाँ और कुछ नहीं एक मुसाफिर खाना है
यह वो घर है अरे भाईयों जो इक दिन छोड़ जाना है ।

(२७)

डेरा गात्री खाँ में प्रचार के लिए पं० लेखराम जी गए वहाँ तीन युवक हिन्दू धर्म छोड़ कर मुसलमान बनना चाहते थे । वे पं० जी का व्याख्यान इस इच्छा से सुनने आए कि पहले व्याख्यान सुनेंगे, इस्लाम को तत्पश्चात् अपनाएंगे, किन्तु हुआ यह कि तीनों कट्टर आर्य समाजी और पं० लेखराम के अनुयायी बन गए । तीनों के नाम इस प्रकार थे :-

१) महाशय चौखानन्द ।
२) महाशय छबीलदास ।
३) महाशय खूबचन्द ।

बिरादरी के लोगों ने तीनों को बिरादरी से निकाल दिया, उन्होंने कोई चिन्ता न की । महाशय छबीलदास की माता की मृत्यु हो गई, अर्थी उठाने वाले सारे गाँव में यही तीन थे, चौथा आदमी न आया । बिरादरी के डर से खूबचन्द की माता ने उसे कमरे के अन्दर बन्द कर दिया, किन्तु खूबचन्द ने खूब चाल चली और घर का दरवाज़ा तोड़ कर पुनः अर्थी को जाकर कन्धा दिया । तीनों ने वेदमन्त्रों से माता का अन्त्येष्टि संस्कार किया । पं० लेखराम के चेलों का सारे गांव में ऐसा प्रभाव पड़ा कि सम्पूर्ण गांव के लोग आर्य समाज के बड़े श्रद्धालु बन गए। ऐसे थे लेखराम के चमत्कार ।

(२८)

पं॰ लेखराम जी का नवयुवकों को यह सन्देश था कि ब्रह्मचर्य का पालन करो, खूब व्यायाम करो खूब खाओ। यदि खूब खाओगे तो खूब काम कर सकोगे। व्याख्यान के पश्चात् भोजन करने बैठे। तो ला॰ मुन्शीराम जी भी इनके साथ थे। पं॰ जी ने १७ पूरियाँ खा कर हाथ धो लिए और ला॰ जी ने १९ पूरियाँ खाई। यह देख कर पं॰ लेखराम जी बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि वह तो उनको लाला ही समझते थे किन्तु वे तो बड़े छिपे रुस्तम निकले।

(२९)

लेखराम के व्याख्यान सुन कर कई नव-युवक आर्य समाज की शरण में आए। मास्टर आत्माराम जी जब मैट्रिक में पढ़ते थे, तो उन्होंने पं॰ लेखराम का व्याख्यान सुना। वे इतने प्रभावित हुए कि पक्के आर्य समाजी बन कर पूर्ण जीवन व्यतीत किया और आर्य समाज की बहुत सेवा की।

(३०)

सियालकोट में पहुँच कर पं॰ जी ने अपने परामर्श से दो सिख-नवयुवकों को मुसलमान बनने से रोका। वहाँ उन्होंने 3½ घण्टे अति प्रभावशाली व्याख्यान दिया। सरदार सुन्दरसिंह पर इतना प्रभाव हुआ कि उसने धर्म परिवर्तन की इच्छा त्याग दी।

(३१)

ऋषि दयानन्द के मिशन का उत्तरदायित्व पं॰ गुरुदत्त विद्यार्थी के देहावसान के पश्चात् आर्य पथिक पर आ पड़ा था। इनके छोटे भाई तोताराम की मृत्यु हो गई, घर जाने के स्थान पर पं॰ जी दीनानगर में शास्त्रार्थ हेतु चले गए, वहाँ से अमृतसर। पिता की मृत्यु हुई तो घर वालों ने पं॰ जी को सूचित ही नहीं किया, क्योंकि उन का लेखराम तो आर्य समाज के लेख लिखने में व्यस्त था। वह अमर बलिदानी धर्म और जाति की रक्षा हेतु नगर-नगर, डगर-डगर, ग्राम-ग्राम, घूम कर प्रचार-कार्य में व्यस्त था। उस के लिए सारा भारत वर्ष ही अपना घर था और सारे भारतवासी उस के भाई थे। उस के परिवार की परिभाषा संकुचित नहीं अपतु बहुत विशाल हो गई थी।

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

अर्थात् उदार चरित्र वाले व्यक्तियों के लिए सारी पृथ्वी के लोग ही अपने कटुम्बी होते है।

(३२)

पं० लेखराम जी बड़े विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे। 'सद्धर्म प्रचारक पत्रिका' में "आर्य गज़ट" में से लिखते थे, किन्तु अपने बारे में कभी बढा चढ़ा कर नहीं लिखते थे। अपने सम्बन्ध में केवल "विनीत, सम्पादक आर्य गज़ट" लिख कर ही छोड़ देते थे। उन्होंने कभी अपनी प्रशंसा के लेख नहीं लिखे।

(३३)

ला० रलाराम जी ने एक बार पं० जी को प्रश्न किया कि सब से उत्तम नशा कौन सा है। पं० जी ने उत्तर दिया :-

"सब नशे मनुष्य को उन्मादी बनाते हैं। ऐसे लोगों को सुध-बुध नहीं होती। हाँ ईश्वर का प्रेम, भक्ति तथा उस का ज्ञान मनुष्य के लिए अति आवश्यक है और इसी ज्ञान के आनन्द में यदि मनुष्य मग्न रहे तो इससे बढ़ कर कोई बात नहीं।"

(३४)

करतारपुर गुरु विरजानन्द जी की जन्म स्थली है और यहाँ की आर्य समाज पं० लेखराम जी के शुभ हाथों से ही स्थापित हुई थी। १८९६ में पं० लेखराम जी जब यहाँ व्याख्यान देने लगे तो विरोधियों ने पत्थर फैंकने शुरु कर दिए। पं० जी व्याख्यान देते रहे और पगड़ी उतार कर कहने लगे, "मुझे पत्थर खाने में बड़ा आनन्द आ रहा है।" उन्होंने भविष्य-वाणी की कि एक दिन अवश्य आएगा जब आर्य समाज के प्रचारकों पर पुष्प-वर्षा होगी। अब मैं जब भी करतारपुर में किसी उत्सव पर जाता हूँ और तो आर्य विद्वानों का अभिनन्दन होते देखता हूँ तो मुझे पं० लेखराम जी की भविष्य-वाणी स्मरण हो आती है और मैं समझता हूँ कि आजकल के प्रचारक एवं आर्य विद्वान पं० लेखराम द्वारा बोई हुई खेती की उपज काटते रहे हैं।

(३५)

१८९६ की एक घटना है। पं० लेखराम का मासिक वेतन उस समय ३० रुपये मासिक था और उन्होंने दिल्ली के एक पुस्तक विक्रेता से १५ रुपये की पुस्तकें खरीदी। जब पुस्तक-विक्रेता श्री दुर्गाप्रसाद को पता लगा कि उसका ग्राहक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी पं० लेखराम है तो उसने कोई पैसा न लिया। ग्राहक और विक्रेता दोनों को हमारा नमस्कार। दोनों में वैदिक धर्म के प्रसार की सच्ची लग्न थी।

(३६)

जब पं० जी जालन्धर कोट किशनचन्द में रहते थे तो मकान का किराया दो रुपये

मासिक था। जालन्धर में विवाह के पश्चात् वह अपनी धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी के साथ रहते थे और यहाँ पर ही लक्ष्मी देवी की गोद हरी हुई थी। इसी किराये के मकान में उन के इकलौते पुत्र सुखदेव की मृत्यु हुई। पुत्र की अन्त्येष्टि जालन्धर में करके, अपनी पत्नी को अपने घर छोड़ कर दूसरे दिन आर्य मुसाफिर आर्य समाज वजीराबाद के वार्षिक सम्मेलन में पहुँच्च गए। पं॰ गंगापति अपनी पत्नि की मृत्यु के पश्चात् प्रचार हेतु कुरुक्षेत्र पहुँचे थे। इसी प्रकार पं॰ भक्तराम अपने पुत्र की अन्त्येष्टि कर के पानीपत आर्य समाज की शोभा-यात्रा की शोभा बढ़ाने निकल पड़े थे। ऐसे बलिदानी वीर, आर्य समाज की धरोहर हैं, इन्हें शत-शत प्रणाम।

(३७)

पं॰ लेखराम जी का खाना पीना बड़ा सात्विक एवं सादा था। उन्हें कोई भी व्यसन न था और पान चबाना भी उन्हें रुचिकर न था। एक बार भोजन के पश्चात किसी भाई ने सब को पान खिलाए। जब वह पान ले कर पं॰ जी के पास आया तो पं॰ जी कहने लगे, "मैं आदमी हूँ, बकरा नहीं। मैं पत्ते नहीं खाता।" किसी बात को घुमा-फिरा कर करने के स्थान पर पं॰ जी स्पष्ट-वादिता में विश्वास रखते थे

(३८)

दिल्ली में आर्य समाज के वार्षिक उत्सव पर एक सज्जन सब के माथे पर चन्दन का टीका लगाता जा रहा था। जब वह सज्जन पं॰ जी के पास पहुँचा तो पं॰ जी ने कहा, "मेरे सिर में दर्द नहीं है।" उस सज्जन ने उत्तर दिया कि यह तो सुगन्धि के लिए लगाया जा रहा है। पं॰ जी ने अपनी हथेली का पृष्ठ भाग आगे करते हुए कह दिया, यहाँ लगा दो। फिर पं॰ जी हाथ सूँघने लगे और सभी दर्शक हँसने लगे।

(३९)

आर्य मुसाफिर को विदित हुआ कि पायल गाँव में कोई हिन्दु मुस्लमान मत में प्रविष्ट होने वाला है। पं॰ जी ने झटपट रेलवे गाड़ी द्वारा लुधियाना जिला के पायल गाँव में पहुँच कर उस व्यक्ति को अपना धर्म न छोड़ने का प्रोग्राम बनाया। पायल में रेलवे स्टेशन नहीं था इसलिए गाड़ी न रुकी। पं॰ लेखराम जी ने अपनी जान की परवाह न करते हुए गाड़ी से बिस्तर सहित छलाँग लगा दी। उन्हें काफी चोटें आईं किन्तु जब उस व्यक्ति को यह पता चला कि उस के धर्म न छोड़ने हेतु पं॰ लेखराम जी ने गाड़ी से छलाँग लगाई है, तो वह पं॰ जी का प्रशंसक बन गया और उसने अपनी धर्म-परिवर्तन की इच्छा का त्याग कर दिया। पायल आर्य समाज का नाम पं॰ लेखराम आर्य मुसाफिर के नाम के साथ स्थायी तौर पर जुड़ा हुआ है। पायल

में घायल हो कर भी उन्होंने धर्म की रक्षा की।

(४०)

पं॰ लेखराम जी जगाधरी में अपना व्याख्यान दे रहे थे। विरोधियों ने हुल्लड़ मचा दिया। किसी दुष्ट ने पं॰ लेखराम जी की पगड़ी उतार कर भट्ठी में फैंक दी। पगड़ी जल गई किन्तु पं॰ जी का व्याख्यान बन्द न हुआ। सभा के श्रोताओं के बीच चौधरी गंगा राम भी बैठे हुए थे। वे चाहे आर्य समाजी नहीं थे किन्तु वह विद्वान् का तिरस्कार सहन न कर सके। व्याख्यान की समाप्ति पर वह सिंह नाद करते हुए बोले, "आज तो पण्डित जी की पगड़ी उतार ली गई है, कल मैं प्रचार कराऊँगा, जिस ने जो करना हो कर ले।" उसने पं॰ जी के व्याख्यान से प्रसन्न हो कर वैदिक धर्म अपनाया और प्रचार करवाया। किसी ने विघ्न डालने का दुःसाहस न किया।

(४१)

पं॰ लेखराम जी पैसे के हिसाब-किताब में बड़ी पवित्रता रखते थे। एक बार सभा के कार्य से उन्हें कहीं भेजा गया, किन्तु उन्होंने केवल एक तरफ का मार्ग-व्यय ही बिल में पेश किया। पूछने पर पं॰ जी ने बताया कि वहाँ पर वह अपना निजी कार्य भी कर के आए हैं, इसलिए केवल एक ओर का किराया ही बिल में दर्शाया गया है। ऐसे धर्म-परायण और ईमानदार प्रचारक कहाँ मिलते हैं ?

(४२)

इस घटना से विदित होता है कि पं॰ लेखराम जी शुद्धि को कितना महत्व देते थे और अपने धर्म की रक्षा के लिए उन में कितनी तड़प थी। १८९६ में उन का पुत्र सुखदेव रुग्णावस्था में था। पं॰ जी अभी प्रचार कर के लौटे थे। महात्मा मुन्शी राम जी ने उन्हें सूचित किया कि मुस्तफाबाद में ५ हिन्दु मुसलमान बनने वाले हैं और दूसरी ओर आप का पुत्र रुग्णावस्था में हैं। 'आप अपने पुत्र की देख-भाल करें, मैं मुस्तफाबाद में किसी और को भेजने का प्रबन्ध करता हूँ।' इस पर धर्म-परायाण पं॰ लेखराम जी कहने लगे, "जी नहीं, वहां तो मेरा ही जाना ठीक है, मुझे अपने एक पुत्र से जाति के पांच पुत्र अधिक प्यारे है।" कहाँ मिलेंगे ऐसे धर्म-प्रचारक।

(४३)

मिर्ज़ापुर में एक कुलवार आर्य समाज का सदस्य बन गया। उस के यज्ञोपवीत संस्कार का प्रश्न उठा। धीर वीर पं॰ लेखराम ने उस का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया। पं॰ लेखराम समय के प्रवाह में बहने वाले व्यक्तियों में से नहीं थे।

अपने उद्यम एवं परिश्रम से उन्होंने उस समय के लोगों की विचार-धारा को नया मोड़ दिया ।

(४४)

अजमेर में पं॰ लेखराम जी से मौलवी अब्दुल रहमान इतना प्रभावित हुआ कि वह आर्य समाजी बन गया । पं॰ जी ने उसको शुद्ध करके सोमदत्त नाम रखा । इस से अजमेर के मुसलमानों में खलबली मच गई और वह लेखराम को मौत की धमकियां देने लगे । आर्य भाईयों ने उन की सुरक्षा के लिए पुलिस की सहायता लेने पर विचार किया किन्तु ईश्वर-भक्त और निडर आर्य पथिक ने यह कह कर टाल दिया, "मुझे कोई जरूरत नहीं । तुम लोग बड़े डरपोक हो । मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है ?" ईश्वर की छत्र-छाया में रहते हुये भक्त को विरोधियों से कभी कोई डर नहीं लगा और उन्होंने अपनी सुरक्षा का कभी कोई प्रबन्ध नहीं किया । इसी प्रकार उन्होंने जम्मु में पहुँच कर ठाकुरदास को मुसलमान बनने से बचा लिया ।

(४५)

आर्य मुसाफिर शिमला में वैदिक धर्म का प्रचार कर के अभी लौटे ही थे । सारे वस्त्र मैले थे, वर्षा के कारण भीगे हुये भी थे, थकावट भी थी, ज्वर भी था । आते ही महात्मा मुन्शीराम जी ने सन्देश दिया कि कल धर्मशाला जाना है । उस समय तो आर्य वीर चुप रहे, मुन्शीराम जी ने सोचा कि वह नहीं जायेंगे । अगले दिन पं॰ जी प्रातः ही महा॰ मुन्शीराम जी की कोठी पर पहुँच कर कहने लगे कि लाला जी मुझे मार्ग व्यय के लिए २० रुपये और अपने दो नये कुर्ते दे दीजिये । धर्मशाला जाना है । वेद प्रचार का काम रुकना नहीं चाहिए । ऐसे वीर प्रचारक का ऋण हम कैसे उतार सकते हैं ? अपने या अपने परिवार के लिए उन के पास कोई समय नहीं था । धर्म और जाति की रक्षा के लिए वह दिन रात तैयार थे ।

(४६)

आर्य समाज सदैव अन्ध-विश्वास, कुरीतियों एवं फलित ज्योतिष-शास्त्र का खण्डन करता रहा है । एक डाकघर के कर्मचारी के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ । ज्योतषी ने कहा कि बच्चा गण्डमूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है और परिवार के सभी सदस्यों के लिए बड़ा अशुभ है । सारे परिवार में शोक की लहर फैल गई । पं॰ लेखराम जी उनके घर चले गये और सभी को धीरज बंधाया । उन्होंने उपदेश दिया कि बालक का तो लाड-प्यार से पालन-पोषण करो किन्तु सदा ज्योतिषियों से बचो । बालक

का जन्म शुभ है, ज्योतिषियों का ज्योतषि अशुभ है । परिवार में प्रसन्नता के नये अंकुर खिल उठे ।

(४७)

नकोदर में एक हिन्दु कानूनगो अपना धर्म छोड़ कर मुसलमान बन गया था । पं॰ लेखराम जी स्वयं नकोदर पहुँचे और कानूनगो का संशय निवारण कर के उसे शुद्ध किया और वैदिक धर्म की दीक्षा दी । पं॰ लेखराम जी ने नकोदर में भी आर्य समाज की स्थापना की ।

(४८)

उन दिनों में बिजली नहीं होती थी और तेल से दीपक जलाये जाते थे । पं॰ जी लेखन कार्य में व्यस्त थे । घर में तेल नहीं था, दीपक जल न पाया । धुन के धनी महात्मा मुन्शीराम जी के घर पहुँच गये और उन की कोठी पर पहुँच कर अपना लेखन कार्य पूर्ण किया । वह काम करते हुए कभी रुके नहीं और विरोधियों के समक्ष कभी झुके नहीं ।

(४९)

एक बार पं॰ जी ने प्रचार हेतु धर्मशाला जाना था । उन दिनों पठानकोट से धर्मशाला जाने के लिए टांगे चलते थे, बसें नहीं चलती थीं । एक टांगे में एक सवारी के लिए स्थान था किन्तु कालेज विभाग के विरोधी सज्जन उस टांगे में बैठे थे उन्होंने पं॰ जी को अपने साथ बिठाने से इन्कार कर दिया । ला॰ कशमीरामल्ल जी ने दूसरा पूरा टांगा पं॰ जी के लिए तैयार करवा दिया । पं॰ जी अकेले ही टांगे पर जाने का विरोध करते रहे क्योंकि उन्हें अधिक व्यय करना पसन्द न था किन्तु श्रद्धालुओं के आगे उनका कोई वश न चला । उन का जीवन बड़ा सरल एवं सादा था ।

(५०)

ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र लिखने के लिए उनको जीवन की घटनायें एकत्रित करते हुए आर्य मुसाफिर बांकीपुर पहुँचे । वहाँ किसी ने तार भिजवा दी कि पं॰ लेखराम जी मारे गये हैं । अपनी मृत्यु का तार और समाचार पाकर पं॰ जी तनिक भी विचलित नहीं हुए और आर्य समाज के मन्त्री को हँस कर कहने लगे, "मृत्यु एक दिन अवश्य ही है किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर और कोई दूसरी मृत्यु नहीं - तवारीख पढ़ो ।" अन्त में पं॰ जी को ऐसी ही मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

(५१)

पं॰ लेखराम जी को सूचना मिली कि कुछ लोग एक हिन्दु लड़की को उसकी इच्छा के विरुद्ध बल-पूर्वक, लाहौर की बादशाही मस्जिद में उसे मुसलमान बनाने की योजना बना रहे हैं। पं॰ लेखराम अपने साथ मास्टर गोबिन्दराम को ले कर मस्जिद में जा पहुँचे और लड़की को अपने साथ ले आए। मस्जिद में इक्ठे हुए लोगों में नर सिंह पं॰ लेखराम को रोकने की किसी की हिम्मत न पड़ी।

(५२)

पुत्र सुखदेव की मृत्यु का कोई तार उन्हें घर से आया हो ऐसी कोई घटना नहीं। ऐसा मानना है कि पुत्र की मृत्यु का तार पाकर वेद प्रचारार्थ चले गये और घर नहीं गये सर्वथा आधार-रहित एवं कपोल-कल्पित है। बाँकीपुर में उन्हें अपनी मृत्यु सम्बन्ध में एक तार मन्त्री आर्य समाज के नाम अवश्य आया था जिस के सम्बन्ध में हम पहले ही लिख चुके है। पुत्र मृत्यु के सम्बन्ध में डाक-तार वाली घटना का कोई सिर पैर नहीं।

(५३)

इस अध्याय में हम पं॰ लेखराम की जीवन की अन्तिम घटना अन्त में लिख रहे हैं। घातक जो शुद्ध होने का बहाना बना कर पं॰ जी के अंग-संग रहता था ४ मार्च १८९७ ईद को दिन पं॰ जी को कत्ल कर के बलि का बकरा बनाना चाहता था किन्तु पं॰ जी प्रचारार्थ सुलतान गये हुए थे और ६ मार्च को लौटे। उसी शाम को सायं ७ बजे घातक को वह अवसर मिला जिस की वह पिछले २० दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था।स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित्र लिखते हुए वह अन्तिम क्षणों का चित्र चित्रण कर रहे थे कि पं॰ जी की माता ने रसोई से आवाज़ लगाई, "पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया।" पं॰ जी चारपाई से उठे, आँखे बन्द कर के अँगड़ाई लेते हुए कहा, "ओफ-फोह! भूल गया।" इसी समय घातक ने सुनहरी अवसर पा कर छुरा पेट में घुसा कर अभ्यस्त हाथ से ऐसे घुमाया कि अन्तड़िया फट कर बाहर निकल आईं। हस्पताल में रात के दो बजे आर्य मुसाफिर स्थायी-यात्रा पर चले गये जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता। उन के अन्तिम शब्द थे : "आर्य समाज में तहरीर और तकरीर का काम कभी बन्द नहीं होना चाहिए।"

अध्याय-१३
अन्तिम बलिदान
आर्य पथिक सदा के पथिक

आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द से लेकर कई साधु, महात्माओं एवं प्रचारकों ने वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु अपने प्राणों की बलि दी। स्वामी श्रद्धानन्द, पं॰ श्याम जी कृष्ण वर्मा, स्वा॰ दर्शनानन्द, पं॰ गुरुदत्त, ला॰ लाजपतराय, महात्मा नारायण स्वामी, पं॰ प्रकाशवीर शास्त्री आदि अनेक दयानन्द भक्तों ने आत्म बलिदान दिया। आर्य मुसाफिर पं॰ लेखराम भी बलिदानियों की इस कड़ी के साथ ऐसा जुड़े कि आर्य समाज का इतिहास अपने रक्त से लिख गए। उन के बलिदान के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने लिखा कि आर्य समाज के विशाल भवन निर्माण में पं॰ लेखराम के रक्त ने सीमेन्ट का काम किया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने कहा, "वे आदर्श धर्म प्रचारक थे। उनकी आवश्यकता आज भी विद्यमान हैं और वैदिक धर्म पुकार-पुकार कर कह रहा है - लेखराम कहाँ हो।

घटना-चक्र ऐसे घटा। मुहम्मदियों और अहमदियों की ओर से आर्य पथिक को मार डालने की धमकियां कई बार मिल चुकी थीं किन्तु वीर पं॰ जी ने जान हथेली पर रख कर वैदिक धर्म का निरन्तर प्रचार किया और कोई अङ्गरक्षक नहीं रखा। १५ फरवरी के आस-पास एक काला, कलूटा, नाटा लगभग ५ फुट ५ इंच कद का युवक जो अपने आप को २ वर्ष से हिन्दु से मुसलमान हो गया बताता था, शुद्धि का बहाना बना कर पं॰ लेखराम जी की शरण में आया। इस से पहले वह महात्मा हंसराज को दयानन्द कालेज, लाहौर में मिला किन्तु महात्मा जी ने उसे शरण देने से इन्कार कर दिया कि उन के पास ऐसी व्यवस्था नहीं। तत्पश्चात् वह पं॰ लेखराम जी के घर पहुँच कर गिड़गिड़ाया और उसने शुद्धि के लिए प्रार्थना की। जिस व्यक्ति को महात्मा हंसराज ने शरण देने से इन्कार करके दूरदर्शिता का परिचय दिया था, उसी व्यक्ति को बिना जाने पहचाने अपने घर में शरण दे कर पं॰ लेखराम जी ने अपने भोलेपन का परिचय दिया। उसने अपने आप को बँगाली बतलाया, किन्तु वह बँगाली भाषा भली प्रकार न जानता था और देखने में बूचड़ लगता था। सम्भवतः वह पटना में रहने वाला कोई कसाई था। उस की आँखे

छोटी, चेहरा गोल और गालें अन्दर की ओर घुसी हुई थी। आयु लगभग २५ वर्ष की थी।

वह बूचड़ सारा दिन पं० जी के आस पास छाया की भांति रहने लगा और पं० जी के घर में दिन में दो तीन बार रोटी खाता। २० दिनों में किसी ने कोई पता न लगाया कि यह कसाई रात को कहाँ ठहरता है।

१ मार्च १८९७ को पं० लेखराम मुलतान आर्य समाज के उत्सव पर चले गए और ६ मार्च दोपहर को वापिस लाहौर पहुँचे। ४ मार्च को ईद का दिन था और कातिल इसी दिन आर्य समाज के अली की बलि लेना चाहता था, किन्तु आर्य पथिक मुलतान में थे। उस बूचड़ ने सभा के कार्यालय और रेलवे स्टेशन के १५-२० चक्कर काटे। ६ मार्च को प्रातः भी उसने पं० जी के निवास-स्थान एवं सभा कार्यालय में उन का पता किया, किन्तु निराश होकर इधर-उधर घूमता रहा और २ बजे पं० जी के साथ सभा कार्यालय में पहुँच गया और पं० जी के पास खिड़की की ओर मुँह करके बैठ गया। व्याकुलता में वह थूकता जाता था। हत्या का भूत सवार था। सभा के मुनीम ने इतराज़ किया, "पण्डित जी! यह स्थान खराब करता है।" किन्तु कोमल-हृदय, दयानन्द के दिवाने, आर्य समाज की सभा के परवाने, पं० लेखराम जी ने उत्तर दिया, "भाई! बैठा रहने दो; तुम्हारा क्या लेता है।" उस समय क्या पता था कि वह हत्यारा पं० जी की जान ही लेकर रहेगा। हत्यारा बार-बार थूक रहा था और उसने सारा शरीर कम्बल से ढका हुआ था। पं० जी ने पूछा कि कहीं ज्वर तो नहीं, हत्यारा बोला, हाँ, कुछ दर्द भी है। पं० जी उस को डा० विष्णुदास के पास ले गए और डा० ने नाड़ी देख कर कहा कि इस को ज्वर आदि तो कुछ नहीं, "इस का खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द हो तो ब्लिस्टर लगा दिया जाए।" किन्तु हत्यारे ने ब्लिस्टर लगवाने से इन्कार कर दिया, क्योंकि कम्बल में छुरी छिपाई हुई थी जो पकड़ी जाती। उसने पीने की दवाई मांगी और डाक्टर ने कहा कोई शरबत पी ले तो खून ठण्डा हो जाएगा। पं० जी ने उसे शरबत पिलवाया और कपड़े की दुकान पर ले जाकर एक थान अपनी माता जी को दिखाने हेतु हत्यारे के हाथ घर भेजा। बजाज ने पं० जी को अकेले में कहा "पण्डित जी! क्या भयानक आदमी साथ लिए फिरते हो?" धर्म वीर पं० जी ने उत्तर दिया, "भाई! ऐसा मत कहो, यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने आया है।"

घर पहुँच कर पं० जी ने बरामदे में बैठे कर ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र

लिखना शुरु किया और घातक बाईं ओर कुर्सी पर बैठ गया। माता जी रसोई में थीं और उनकी पत्नी अलग कमरे में पढ़ रही थी। पं० जी उस बूचड़ को कहने लगे, "अब देर हो गई है, भाई तुम भी आराम करो।" किन्तु हत्यारा बैठा रहा। माता जी ने रसोई के अन्दर से ही आवाज़ दी, "पुत्र लेखराम तेल नहीं आया ?" पं० लेखराम लिखते-लिखते ऋषि दयानन्द की अजमेर में हुई मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे, कागज़ वहीं रख दिए और घातक की ओर मुँह कर के अँगड़ाई लेते हुए आँखे मूँद कर बोले, "ओफ़, फोह भूल गया।" माता को क्या पता था कि उस का कुलदीपक बुझने वाला है और वह फिर कभी जीवन-बत्ती को जलाए रखने के लिए कभी तेल ला कर नहीं दे सकेगा। पं० लेखराम जी को यह भी विदित न था कि ऋषि दयानन्द के जीवन की अन्तिम लीला लिखते हुए उस के अपने जीवन की अन्तिम लीला समाप्त होने वाली है। दयानन्द के अन्तिम शब्द थे, 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।" पं० जी ने ज्यों ही सीना तान, आँखे मूँद कर अँगड़ाई ली, हत्यारे को वह अवसर मिल गया, जिसकी उसे पिछले २० दिनों से तालाश थी। उस ने झटपट अपना छुरा पं० जी के पेट में घुसा कर ऐसे अनुभवी हाथों से घुमाया कि अन्तड़ियाँ बाहर निकल आईं। रक्त की धारा बहने लगी। आर्य पथिक ने न ही अपना धैर्य खोया और न ही चिल्ला कर गली मुहल्ले के लोगों को एकत्रित किया। उन्होंने बड़ी वीरता से हत्यारे के हाथ से छुरा छीन लिया और दूसरे हाथ से बाहर निकली नाड़ियों को सम्भाले रका। लक्ष्मी देवी और माता जी सहायतार्थ आगे बड़ी। घातक ने रसोई से बेलन पकड़ कर माता जी पर ऐसा प्रहार किया कि वह अचेत हो कर गिर पड़ी और हत्यारा शीघ्रातशीघ्र सीढ़ियाँ उतर कर ऐसा लुप्त हुआ कि पुलिस के ढूँढ निकालने के सभी प्रयत्न असफल रहे।

रक्त से लथपथ धर्मवीर चारपाई पर लेटा था और अपने हाथ से अन्तड़ियों को सम्भाले हुए था। किन्तु चेहरे पर कोई उदासी नहीं और उसी धैर्य एवं वीरता से कहने लगे, "वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया।" काश दुष्ट की दुष्टता को पहले पहचान जाते और उसे अपने पास रखने को वैसे ही ठुकरा देते जैसे महात्मा हंसराज ने ठुकराया था। सारे लाहौर में पं० जी पर हुए घताक हमले की खबर जंगल की आग की भांति फैल गई। ला० मुन्शीराम भी अचानक उसी दिन चार बजे की गाड़ी से लाहौर पहुँचे थे। हस्पताल में पहुँचे तो आर्य पथिक पहले जैसी वीर-वाणी में बोले, "नमस्ते लाला जी आप भी आ गये।" फिर कहने लगे, "लाला जी बेअदाबयाँ माफ करना।" मुन्शीराम का दिल भर आया, किन्तु

आर्य सिंह के सामने रो भी नहीं सकते थे। लाला जी ने कहा कि ईश्वर कृपा से सब ठीक हो जायेगा, प्रभु का ध्यान करो। आर्य वीर फिर बोले, "अच्छा तो शायद मैं हो जाऊँगा, परन्तु लाला जी! मेरे अपराध क्षमा करना।" यह कह वह वेद-पाठ करने लगे और अन्तिम श्वास तक उसी मन्त्र का जाप करते रहे, जो ऋषि दयानन्द को सब से प्यारा था और जिसको उन्होंने प्रार्थना-मन्त्रों में प्रथम स्थान दिया दिया था -

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रंतन्न आसुव॥

बीच-बीच में गायत्री मन्त्र का भी जाप करते रहे और कहते रहे, परम पिता परमेश्वर, तुम महान हो। छुरी लगने से ऐसे भयानक घाव हो चुके थे कि हस्पताल के डाक्टर पेरी हक्के-बक्के हो कर कहने लगे कि जिस व्यक्ति के शरीर से दो घण्टे तक रक्त बहता रहे वह ज़िन्दा कैसे है? लगभग दो घण्टे तक डाक्टर अन्तड़ियाँ सीते रहे। रात के दो बजे जीवन लीला समाप्त हो गई। अन्त समय में न उन को माता की चिन्ता थी, न पत्नी की चिन्ता थी। चिन्ता तो केवल आर्य समाज की थी और उन का अन्तिम सन्देश था, "आर्य समाज में तहरीर और तकरीर का काम कभी बन्द नहीं होना चाहिए।"

सारे लाहौर में सन्नाटा छा गया। शोक की इस वेला में सभी लोगों ने धर्म की दिवारें तोड़ दी। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा कि आर्य-पथिक सदा का यात्री बन गया और आर्य जनता को सदा के शोक में छोड़ गया। मृतक को अर्थी पर रखा तो ऐसे लगा जैसे आँखे मूंद कर लेटे हुए सन्ध्या कर रहे हों। हस्पताल में लगभग दो हज़ार लोग अश्रुधारा बहा रहे थे। जब शहीद की सवारी अनारकली बाज़ार में पहुँची तो अन्तिम यात्रा में २० हज़ार श्रद्धालुओं का ताँता लग चुका था। ४० हज़ार आँखों से अश्रु धारा बह रही थी। एक युवक बेहोश होकर गिर पड़ा। किसी किसी स्थान पर शोक-यात्रियों की संख्या ३० हज़ार से भी अधिक हो जाती थी। भूमि पुष्प वर्षा से रंगी गई। पं० लेखराम की वृद्ध माता के विलाप ने कई दिलों को हिला दिया जब उन्होंने क्रन्दन भरी आवाज़ में कहा

"हा! वीर लेखराम, पुत्र क्या तुम सदा के लिए मेरी सेवा से जुदा होते हो।"

और फिर

"हा ! पुत्र लेखराम ! वीर ! क्या तुम सदा की यात्रा में ही चले गये ? फिर दर्शन न दोगे ?" इस मातृ-क्रन्दन को सुनने वालों में स्वामी श्रद्धानन्द भी थे जो मन ही मन में चिन्तन कर रहे थे कि वीर आर्य पथिक का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा । उस के रक्त की एक-एक बूँद से एक-एक वीर उत्पन्न होगा, जो माता एवं मातृ-भूमि की सेवा करेगा । ऐसे ही वीर सोमनाथ, वजीरचन्द्र, मथुरादास, तुलसीदास, योगेन्द्रपाल, जगतसिंह आदि अनेक वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी । स्वयं स्वामी श्रद्धानन्द, कल्याण पथ के पथिक से स्थाई पथिक बन कर ऐसी वीर गति को प्राप्त हुए जिस पर राष्ट्र को गर्व है । आर्य समाज के बलिदान के इतिहास ने अपने आप को फिर दोहराया और स्वामी श्रद्धानन्द को अब्दुल रशीद की गोली का शिकार बनाया ।

ऐसे अमर बलिदानियों को कोटि-कोटि नमस्कार ।

"जब से सुना है कि मर के हो जायेंगे शहीद।
सिर पै कफन लिए कातिल को ढूँढ़ते हैं हम ।।

धर्म एवं देश पर बलिदान होने वालों को मौत एवं कातिल से कोई डर नहीं होता । वे अमर पथ के पथिक टस से मस नहीं होते और मरणोपरान्त उनको श्रद्धान्जली अर्पण करने हेतु सहस्रों प्रशंसकों का तांता उस वहाँ पर लग जाता है जहाँ उनकी बलिदान-स्थली होती है। कवि ने सच्च कहा है:-

"शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का यही आखिर निशाँ होगा ।।

अध्याय-१४
बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी

पं॰ लेखराम जी एक साधारण ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए। उन में ब्राह्मणों वाली विद्वत्ता, सहनशीलता, करुणा, त्याग एवं सरलता थी। वह एक उच्च-कोटि के ब्राह्मण थे और उनका वैवाहिक जीवन एक आदर्श ब्राह्मण-गृह था, किन्तु वे किसी अन्याय और झूठ को सहन नहीं कर सकते थे और बड़े से बड़ा बलिदान देने को तत्पर रहते थे। इसलिए उन में क्षत्रिय-गुण भी विद्यमान थे। विरोधियों से लोहा लेने के समय वह परशुराम का रूप धारण कर लेते थे।

(१)

एक आदर्श ब्राह्मण - पं॰ लेखराम जी त्याग, तपस्या एवं विद्वत्ता की मूर्त्ति थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुसार पं॰ जी एक सच्चे ब्राह्मण थे और उन का घर एक आदर्श ब्राह्मण परिवार था। उन्होंने १२ १/२ वर्ष तक आर्य प्रतिनिधि सभा में उपदेशक के रूप में नौकरी की किन्तु अपना वेतन बढ़ाने के लिए कभी प्रार्थना नहीं की। कई वर्ष तक वे २५ रुपये मासिक पर कार्य करते रहे, उनके विवाह के पश्चात् उनका वेतन ३० रुपये कर दिया गया। और जब उनके घर पुत्र हुआ तो उन का वेतन ३५ रुपये मासिक था। उन्होंने केवल २००० रुपये का जीवन बीमा करवाया हुआ था और जब उनके बलिदान के पश्चात् वह राशि उनकी पत्नी को मिली, तो उन्होंने यह पूर्ण राशि गुरुकुल काँगड़ी को दान में दे दी। वह एक आदर्श ब्राह्मण पति की आदर्श पत्नी थी। दोनो का जीवन बड़ा सात्विक एवं त्यागमय था। पं॰ जी के पिता, छोटे भाई तोताराम तथा प्रिय पुत्र सुखदेव की मृत्यु ने उन्हें विचलित नहीं किया। वह पहले की भांति प्रचार कार्य में डटे रहे। वेद में लिखा है, "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।" ब्राह्मण सृष्टि में शरीर के मुख के समान है। ब्राह्मण का काम है कि दिन रात ज्ञान की प्राप्ति की ओर लगा रहे और प्राप्त ज्ञान दूसरों में प्रसार करे। मुख में जो भोजन जाता है, वह उसे अपने पास न रख कर, उसे पचने योग्य बना कर शरीर के अन्य भागों के लिए बाँट देता है, अपने पास कुछ नहीं रखता। इसी प्रकार शुद्ध आजीविका कमाना ब्राह्मण का मुख्य धर्म है। पं॰ लेखराम जी पूर्ण रूपेण शुद्ध ब्राह्मण थे। जीवन के अधिकांश भाग में वह २५ रुपये मासिक वेतन ले कर अपने परिवार के साथ सुखी जीवन व्यतीत करते रहे। उनके बलिदान के समय उन का वेतन २५ रुपये मासिक था। ऐसे निर्मोही, लोभ, लालच एवं धन-सञ्चय से कोसों दूर रहने वाले प्रचारक कहाँ मिलते है ?

(२)

सादा जीवन और उच्च विचार - पं॰ लेखराम जी की दिन-चर्या और जीवन

बहुत सरल एवं सादा ढंग का था, किन्तु उच्च विचारों के स्वामी थे। पुलिस जैसे बदनाम व्यवसाय में नौकरी की, किन्तु अपने दामन को सदा साफ रखा और कभी रिश्वतखोरी की कमाई नहीं की। हुक्का, सिग्रेट, बीड़ी जैसी बुरी आदतों से तो वह न केवल दूर ही रहे किन्तु औरों को भी इन व्यसनों से दूर रहने की प्रेरणा सदैव दिया करते थे। माँस, मदिरा एवं अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गए। वे तो पान भी नहीं खाया करते थे। पहरावा बड़ा सादा हुआ करता था। इन के स्कूल के अध्यापक मास्टर तुलसी दास के अनुसार पं० लेखराम अपने पहरावे का विशेष ध्यान नहीं देते थे, पगड़ी का पल्ला खुल कर गले में पड़ा हो या कुर्ते की घुण्डी ढीली हो, उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती थी किन्तु उनके विचार बहुत शुद्ध, निर्मल एवं उच्च होते थे। बाहरी दिखावे की ओर वे कभी नहीं जाते थे। पहरावे के ऊपर वाले वस्त्र यदि मैले भी हों तो भी कोई परवाह नहीं, किन्तु शरीर के साथ लगने वाले वस्त्र साफ सुथरे होते थे। महात्मा हंसराज का दिया हुआ साफ कुर्ता वे नीचे पहने लेते थे और अपना मैला कुर्ता उसके ऊपर। सभा के प्रधान महात्मा मुन्शी राम जी के कथनानुसार आर्य-पथिक केवल सभा से वही किराया और मार्ग व्यय लिया करते थे जो उनका वास्तव में व्यय होता था, उस से ऊपर कभी नहीं लेते थे। इक्का गाड़ी और टांगे आदि का व्यय केवल उसी हालत में लेते थे, जहाँ सामान बिस्तर आदि उठा कर पैदल नहीं पहुँच सकते थे। इसीलिए महात्मा मुन्शीराम उन्हें "सत्त्व-गुणी ब्राह्मण" कहते थे। आज के प्रचारकों एवं अन्य कर्मचारियों को लेखराम के जीवन से सात्त्विकता का यह गुण धारण करना चाहिए।

(३)

सत्य मार्ग के अडिग पथिक - पं० लेखराम जी सत्य मार्ग के अडिग पथिक थे। सत्य को सत्य और झूठ को झूठ कहना उनके जीवन की कार्य शैली थी। उनका सारा जीवन सत्य धर्म पर अविचलित रह कर व्यतीत हुआ। बचपन में ही वे गीता भी पढ़ते थे, अद्वैतमत का साहित्य भी पढ़ते थे और कुरान भी। वे सदा सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए तत्पर रहते थे। जब उन से पूछा गया कि वे मुहम्मदियों की उर्दु और फारसी में लिखी पुस्तकों का गहरा अध्ययन करते हैं, कहीं मुसलमान बनने का इरादा तो नहीं। उन्होंने तपाक से उत्तर दिया "बेशक ! अगर दस घड़े रखे हो और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा-थोड़ा पानी सब में से न पिया जाये तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है। इस तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म कौन सा हो।" वे सत्य के उपासक एवं सत्यवादी थे। आर्य समाज के उच्च सिद्धान्तों के आगे कई बार बड़े-बड़े उपदेशक भी गिर जाते हैं, किन्तु पं० लेखराम जी के जीवन में ऐसी कोइ

घटना न हुई कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों से समझौता किया हो। जब तक उनको नियोग की प्रथा समझ नहीं आई उन्होंने इस के पक्ष में अपना मुँह नहीं खोला और जब एक बार नियोग का ज्ञान पा लिया तो इस विषय के सर्वोत्तम वक्ता बन गए एवं इस विषय पर पुस्तक लिख कर इसका मण्डन किया। गुरु दयानन्द के आदेशानुसार ३५ वर्ष की आयु तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया और विवाहोपरान्त भी ऋतुगामी रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन किया। उन्होंने गृहस्थियों को उपदेश देते हुए अपनी दिन चर्या में लिखा है कि एक चारपाई पर कभी नहीं सोना चाहिए। वे सदाचारी थे और उन का अन्दर बाहर एक सा था। उन्होंने आर्य सभासदों को यह कह कर के डाँट दिया कि यदि आप ने एक भी आर्य डाक्टर नहीं बनाया तो "आप खाक आर्य समाजी हैं।" उन्होंने पेशावर आर्य समाज के चुनाव में प्रधान-पद के लिए प्रस्तुत नाम पर टिप्पणी करते हुए कह दिया कि जो व्यक्ति माँस और मदिरा का सेवन करता है, वह प्रधान-पद पर शोभा नहीं देता। कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो सब के सामने सच को सच और झूठ को झूठ कहने के लिए सदा तत्पर रहते हैं ? उन्होंने बड़े अफसोस से दानापुर (बिहार) आर्य समाज की घटना अपनी डायरी में नोट की कि इस समाज के कई सदस्य बिरादरी के डर से पितरों का श्राद्ध करते हैं। एक सदस्य के लड़के की शादी में रण्डी का नाच करवाया गया और कई अन्य आर्य सभासद् उस नाच को देखने गए। उन्हें अपने समाज की कितनी चिन्ता थी। जहाँ भी विधर्मी वेद-विरुद्ध प्रचार करते या किसी हिन्दु को मुसलमान बनाने का प्रयत्न करते, पं० लेखराम जी अपनी जान हथेली पर रख कर वहाँ पहुँच जाते थे। चाहे सत्य-मार्ग पर चलते हुए उन्हें छुरी से अपनी अन्तड़ियाँ कटवानी पड़ीं, किन्तु सत्य का पथिक सत्य मार्ग पर अड़िग रहा।

(४)

हाजिर जवाबी का जवाब नहीं - पं० लेखराम जी की हाजिर जवाबी का कोई जवाब न था। जटिल से जटिल समस्या का वे शीघ्रातिशीघ्र उत्तर दे कर सुनने वालों को चकाचौंध कर दिया करते थे। उनकी मेधा के सामने बड़े-बड़े मौलवी, पण्डित और शास्त्रार्थी अपनी हार स्वीकार कर लिया करते थे और उनका दबदबा ऐसा था कि वे शेर की तरह एक महीना तक कादियाँ में गरजते रहे, किन्तु विरोधी मत उन के सामने आने से कतराते रहे। दूसरों की दलील को मिनटों में काट देने का सामर्थ्य उन की हाज़िर जवाबी में था। यह उनका 'ब्रह्मास्त्र' था जिस के सामने किसी और की दलील नहीं चल पाती थी। बचपन में इन के स्कूल में जब निरीक्षण महोदय निरीक्षण के लिए आऐ तो बालक लेखराम को सब से मेधावी-छात्र घोषित किया गया, जो इन की हाजिर जवाबी का प्रमाण था। दिल्ली के उत्सव में एक आदमी केशर का चन्दन सब भाईयों के माथे पर लगा रहा था। वे पं० जी

के पास भी आया तो पं० जी ने कह दिया "मेरे सिर में दर्द नहीं है ।" उसने उत्तर दिया कि वह सुगन्धि के लिए लगा रहा है । इस पर पं० जी ने अपने दाये हाथ का पिछला भाग सामने कर के कहा, "तो यहाँ लगाओ ।" चन्दन लगाने पर पं० जी हाथ नाक के पास ले जाकर सूँघने लगे । सारे उपस्थित सज्जन हँसने लगे । इसी प्रकार एक बार आर्य पथिक को किसी भाई ने उन्हें पान भेंट किया । पं० जी तुरन्त बोले, "देखते नहीं हो, मैं मनुष्य हूँ, बकरा नहीं हूँ कि पत्ते खाऊँ ।" एक व्याख्यान में मौलवी बाकर हुसैन पं० लेखराम जी से उलझ गए। वे शिया थे और कहने लगे कि उन के मत में चुहिया हराम है । पं० जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि शिया हो कर भी चूहे की बजुर्गी और ज़बरदस्ती से कैसे इन्कार कर सकते हैं । वास्तव में वे नामुराद चूहा था जिस ने मैदान कर्बला में सब पानी की मशकें काट दी थी । जब आप पुलिस विभाग में सार्जेन्टी करते थे तो सरकारी काम के लिए कहीं गए, और टांगे पर बैठ कर जा रहे थे । इन के किसी इन्स्पैक्टर ने देख लिया और पूछा कि टांगे पर क्यों जा रहे हो, पं० लेखराम जी बोले कि अपनी जेब से पैसे खर्च कर के अँग्रजी शासन की शान बना रहा हूँ । १८९६ में करतारपुर आर्य समाज की स्थापना उन्हीं के हाथों से हुई । पौराणिकों ने उन पर पत्थर फैंके, पं० जी ने पगड़ी खोल दी और भाषण जारी रखते हुए कहा कि जहाँ उन पर आज पत्थर पड़ रहे हैं वहाँ भविष्य में वैदिक धर्म के प्रचारकों पर फूल वर्षा होगी । अब मैं जब भी कभी करतापुर दण्डी स्वामी विराजनन्द जी के आश्रम में जाता हूँ तो पं० लेखराम जी की भविष्य-वाणी स्मरण हो जाती है ।

दृढ संकल्पी एवं स्थित-प्रज्ञ - पं० लेखराम दृढ़ संकल्पी थे और ऐसे स्थित-प्रज्ञ थे कि जो बात एक बार मन में ठान ली उस को पूर्ण करके ही छोड़ते थे । अभी आप ११ वर्ष के ही थे कि इनके चाचा गण्डाराम जी इन्हें अपने साथ सुआबी ले गए । इन की चाची श्रीमती गणेश देवी एकादशी का व्रत रखती थी । छोटे बालक ने भी चाची जी के साथ एकादशी का व्रत नियमपूर्वक आरम्भ कर दिया और चाचा चाची के लाख समझाने पर भी अपने प्रण पर दृढ रहे । पुलिस विभाग में केवल ९ वर्ष दासता का जीवन बिताया और जब ऋषि दयानन्द के अजमेर में दर्शन करने से मन के संशय दूर हुए तो सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया । बड़े कष्ट सहे, पत्थर खाए, गालियाँ खाई, विरोधियों ने पगड़ी खोल कर जला दी, पिता, भाई और पुत्र की मृत्यु हो गई किन्तु धन्य थे पं० लेखराम जिन्होंने कभी दिल में मलिनता नहीं आने दी और ३६ वर्ष की आयु में वैदिक धर्म के प्रचार हेतु अपने जीवन की बलि दे दी ।

उन के व्यक्तित्व में संकल्प और क्रोध का बड़ा विचित्र सम्मिश्रण था । अपनी बात को पूरा करवाने में वह कई बार गुस्से में आ जाते थे । एक बार बहुत

तेज़ ज्वर में वह ला॰ देवराज जी के घर में ठहरे हुए थे। किसी शरारती बच्चे ने जिस गमले पर ओ३म् लिखा था उसको जूता लगा दिया। वह लड़का तो भाग गया किन्तु पं॰ जी ला॰ देवराज जी से रुष्ट हो कर कहने लगे कि मैं यहाँ नहीं रहूँगा। देवराज जी ने समझाया कि इनमें उनका क्या कसूर है तो पं॰ जी बोले कि गमला ऊँचे स्थान पर तो रख सकते हो, जहाँ कोई इसे अपमानित न करे। ऐसे धुन के धनी थे। वैदिक प्रैस अजमेर से छपी पुस्तक की अशुद्धियों से तंग आ कर पं॰ जी ने गुस्से में आकर पुस्तक के ४० लिखे हुए पृष्ठ फाड़ दिए। जब गुस्सा ठंडा हुआ तो प्रैस के संरक्षक ने पण्डित जी को प्रेम-भाव से मना लिया और 'साँच को आँच' नहीं नामक पुस्तक लिखी। जब धर्मोपदेशक पत्र के लिए कापी नवीस (हाथ से लिखने वाला) नहीं मिलता था तो स्वयं कातिब का काम करने लग जाते थे, किन्तु पत्र बन्द नहीं होने दिया।

पं॰ लेखराम जी ने सारा जीवन अपनी प्रतिज्ञा-पालन में कभी समझौता नहीं किया। स्कूल में सारा दिन प्यासे बैठे रहे, किन्तु मौलवी के कहने पर भी भ्रष्ट घड़े से पानी नहीं पिया। आठवीं कक्षा में इतिहास विषय में फेल हो गए किन्तु प्रश्नों का उत्तर वैसे नहीं दिया जैसा पाठ्यक्रम की पुस्तक में लिखा था। बहुत से इतिहासकारों का मत है कि भारत का इतिहास जिस में यह पढ़ाया जाता है कि आर्य लोग भारत-वासी नहीं थे किन्तु दर्रा खैबर के मार्ग से भारत में आए थे, सत्य पर आधारित नहीं। क्योंकि मुसलमान और अँग्रेज लोग बाहर से आकर भारत पर राज्य करने लगे थे, इसलिए उन्होंने अपने पक्ष को सुदृढ करने हेतु ऐसा लिखा कि आर्य लोग भी बाहर से आकर भारत-वर्ष में बस गए थे। ऋषि दयानन्द ने ऐसे इतिहासकारों के मत का खण्डन करते हुए प्राचीन भारत का नाम आर्यवर्त्त बताया है। वेदों में, उपनिषदों मे, यहाँ तक कि बाल्मीकि रामायण एवं अन्य प्राचीन आर्य ग्रन्थों में भी हमारे देश का नाम आर्यवर्त्त ही आया है। मुसलमानों ने सिन्धु घाटी की सभ्यता के अनुसार रहने वालों को हिन्दु कहना शुरु किया और हिन्दुओं के देश को हिन्दोस्तान के नाम से कहा जाने लगा। हिन्दु होने का हमारा नामकरण दूसरों ने कर दिया और लिख दिया। सरकारी पाठ्यक्रम अनुसार पढ़ाया जाने वाला इतिहास तथ्यों पर आधारित नहीं।

इस का परिणाम यह हुआ कि जहाँ बालक लेखराम अन्य सभी विषयों में बहुत अच्छे अङ्क प्राप्त करके पास हो गया, वहां इतिहास के विषय में अनुत्तीर्ण हुआ। पं॰ लेखराम की वास्तिक स्कूली शिक्षा आठवीं फेल ही रही, किन्तु उन का स्वाध्याय इतना गहन एवं गम्भीर थी कि बड़े से बड़ा विद्वान भी उन के समक्ष घुटने टेक दिया करते थे। संसार का कोई भी प्रलोभन या विरोधियों की कोई भी धमकी उनको सत्य-पथ एवं उनकी प्रतिज्ञा से अलग न कर सकी। श्री स्वामी श्रद्धानन्द

जी महाराज लिखते हैं कि जो लेखराम आठवीं श्रेणी में इतिहास में फेल हो गया, उसी लेखराम को जिला के अफसरों ने पेशावर जिला का इतिहास लिखने हेतु उत्तरायित्व सौंपा, जिसे लेखराम जी ने अति निपुणता से निभाया। उनके लिए धर्म धर्म था और अधर्म अधर्म। सच्च को सच्च और झूठ को झूठ कहने में वे कभी भी हिचहिचाते नहीं थे। उन्होंने अपने विचारों, मन्तव्यों एवं सिद्धान्तों पर कभी किसी से किसी भी कीमत पर कोई समझौता नहीं किया।

एक निडर योद्धा - पं॰ लेखराम के शब्द कोष में डर शब्द के लिए कोई स्थान नहीं था। वे ऋषि दयानन्द के एक ऐसे वीर योद्धा थे, जिन में निडरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने ठीक को ठीक कहा, यदि इतिहास में अनुत्तीर्ण हो गए तो कोई बात नहीं, यदि चाची जी के साथ एकादशी का नियम-पूर्वक व्रत रखा तो कोई डर नहीं, यदि अपने पुलिस इन्सपैक्टर को खरी-खरी सुना दी तो कोई डर नहीं, करतारपुर में यदि उन पर पत्थर फैंके गए तो कोई डर नहीं - आर्य समाज की स्थापना तो अपने हाथों से कर दी, यदि सभा में पगड़ी उतार कर किसी ने अपमान कर दिया तो आर्य वीर को कोई चिन्ता नहीं, इकलौता पुत्र मृत्यु-शैय्या पर पड़ा है, किन्तु वीर प्रचारक को देश के पाँच पुत्रों की शुद्धि अपने पुत्र की जान से प्यारी है। हत्यारे ने छुरे से पेट की सारी अन्तड़ियाँ बाहिर निकाल दीं और ले जाने में दो घण्टे लग गए किन्तु वीर लेखराम गायत्री का जाप करते रहे और गुरु दयानन्द की भांति कहते रहे कि हे ईश्वर तेरी लीला पूर्ण हो, तुम महान् हो। आर्य समाज वन्नु के उत्सव पर वहाँ के आर्य समाजी भाईयों ने सोचा कि पं॰ जी की सुरक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध कर लिया जाए। पं॰ जी ने आर्य भाईयों की कानाफूसी सुन कर वहां के मन्त्री को कहा, "अगर मैं डरूँ तो घर क्यों न बैठा रहूँ, प्रचार के लिए बाहर क्यों निकलूँ। पुलिस की कोई ज़रूरत नहीं।"

शिमला में आप का व्याख्यान हो रहा था तो एक धर्मान्ध युवक बीच में ही चिल्ला कर बोला, "काफिरों को काटने वाली शमशीर को मत भूल।" पं॰ जी सिंह गर्जना करते हुए कहने लगे "मुझे बुज़दिल तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूँ।" पं॰ लेखराम जी अजमेर में व्याख्यान के लिये गए थे। आर्य समाजी भाईयों ने सोचा कि पं॰ जी की रक्षा हेतु पुलिस सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया जाये। पं॰ जी को जब पता लगा तो कहने लगे, कोई ज़रूरत नहीं। तुम लोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है ? एक अन्य घटना बांकीपुर आर्य समाज की है। विरोधियों से निडर रहने वाले पं॰ जी आर्य समाज के मन्त्री को कहने लगे, "मन्त्री जी! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है, किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं। तवारीख पढ़ो और देखो कि इस जमाने के पर्दे पर जिन

जिन लोगों ने अपने धर्म के लिए गला कटवा दिया है, उस कर्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है ।" ऐसे निडर धर्म प्रचारक किसी विरली जाति को ही मिलते है । सच्च कहने में वे किसी से डरते नहीं थे । मुकेरियाँ आर्य समाज वालों ने शास्त्रार्थ रखवा लिया, उन्हें डर था कि पं० लेखराम जी के अक्खड़पन से स्थिति कहीं बिगड़ न जाए, इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान ला० मुन्शीराम जी उन्हें कहने लगे कि पं० जी आप जगराओं आर्य समाज के उत्सव पर चले जाएं, पं० लेखराम जी बोले, "जाओ, नहीं जाता" और नहीं गए । एक बार मलेरकोटला में महात्मा मुन्शीराम के साथ प्रचारार्थ गए । पं० जी वहाँ और रुकना चाहते थे, किन्तु सभा के प्रधान चाहते थे कि पं० जी उन के साथ ही चलें । इस पर पं० जी सभा प्रधान से बिगड़ गए और कहने लगे, "मैं सब कुछ समझ गया हूँ । आप मुझे आर्य से सभा का नौकर मत समझिए । ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य नहीं है । क्या इन बुज़दिलों को खुश करने के लिए मैदान से भाग जाऊँ । मैं सराय में डेरा कर के यहीं रहुँगा ।" और पं० जी वहीं रुक गए । ला० मुन्शीराम खिलखिलकर हँसे और पं० जी को नमस्ते कह कर चल दिए। ऐसे महान थे हमारे प्रचारक और ऐसे ही महान थे हमारे सभा प्रधान । कई बार सभा से प्रोग्राम लिए बिना ही वे कई उत्सवों में एवं शुद्धि हेतु पहुँच जाते थे और जब सभा के अधिकारी उन पर रोक टोक लगाते तो वे कह दिया करते थे, "मेरा वेतन काट लो ।" उन का वेतन कौन काट सकता था क्योंकि सभी को विदित था कि पं० लेखराम वेद-प्रचार हेतु दिन-रात कार्य-रत हैं । अन्तिम समय में भी उन्होंने अपनी सहनशीलता एवं निडरता का परिचय देते हुए घातक के हाथ से छुरा छीन लिया और पीड़ा को सहन करते हुए मुँह से 'सी' या 'हाय' तक न की । "ओ३म् विश्वानि देव," और "गायत्री मन्त्र" का जाप करते रहे । उन्होंने वेदोक्त वह अवस्था प्राप्त कर ली थी जिसके लिए अन्य लोग केवल प्रार्थना करते हैं :-

अभयं मित्रादभयम् अमित्रादभयं ज्ञाताद्भयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।। (अथर्व वेद)

हे प्रभो ! हम मित्र और अमित्र (शत्रु) दोनों से निडर रहें, परिचित एवं अपरिचत लोगों से निडर रहें । दिन और सभी कालों में हम निर्भीक हों । हमारी सभी आशाएं और हमारे लिए सभी दिशायें सुखकारी हों ।

वाणी और लेखनी का जादु - कई वक्ता होते हैं तो प्रभावशाली लेखक नहीं होते और यदि अच्छे लेखक होते हैं तो वाणी में आकर्षण नहीं होता, किन्तु पं० लेखराम की लेखनी और वाणी दोनों में जादु का असर था, जिससे पढ़ने वाले एवं सुनने वाले मन्त्र-मुग्ध हो जाया करते थे । पं० लेखराम ने अपने नाम को सार्थक किया और अपनी लेखनी से ऐसे लेख लिखे कि पाठक उन की विद्वत्ता, तर्क-शक्ति एवं

लेखनी के लोहे को मान गए थे। उनके लिखे हुए ग्रन्थों की इतनी मांग होती थी कि हाथों हाथ बिक जाया करते थे। उन्होंने सितम्बर १८८४ को सार्जेन्टी की नौकरी से मुक्ति पाई और वर्षों में लेखराम ने अनगिनत भाषण दिए और लाखों नर-नारियों तक ऋषि दयानन्द का सन्देश पहुँचाया। उन्होंने "सद्धर्म प्रचारक" एवं "आर्य गज़ट" के सम्पादन का कठोर काम भी किया, लोगों को शुद्ध किया और सैंकड़ों शास्त्रार्थ किए। उनकी छोटी बड़ी कुछ विशेष पुस्तकों का संग्रह "कुलियात आर्य मुसाफिर ग्रन्थ" नाम से दो भागों में उपलब्ध है। आर्य समाज के प्रचारक बनने से पहले ही वक्ता एवं लेखक के रूप में इनकी प्रसिद्धि सारे भारत-वर्ष में फैल चुकी थी। इन की पुस्तकें "तकज़ीवे बुराहीने अहमदिया", "नुस्खाये एब्ते अहमदिया" और "हुज्जते इस्लाम" विधर्मियों के ढोल के पोल खोल कर भारत-वासियों के दिलों में घर कर चुकी थीं। ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र सम्बन्धी पहला ग्रन्थ लिखने का सौभाग्य भी पं॰ लेखराम को जाता है। चाहे अपने जीवन काल में वे जीवन-चरित्र का काम पूर्ण न कर सके और ८७९ पृष्ठ लिख कर अधूरे छोड़ गये और जीवन-चरित्र पूर्ण करने का काम श्री आत्मा राम अमृतसरी ने पं॰ जी लेखराम जी द्वारा एकत्रित की गई सामग्री के आधार पर किया। पं॰ जी अपने भावी कार्य-क्रम १८ पुराणों और १८ उप-पुराणों की पड़ताल कर के लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे। ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र छपवाने के पश्चात् वे मक्का, मदीना, ईरान और अरब देशों में प्रचार के लिए जाना चाहते थे और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने आर्य समाज के दस नियमों का भाष्य अरबी भाषा में लिख लिया था और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बनवा ली थी जिनको अरबी भाषा में छपवाकर वे अपने साथ ले जाना चाहते थे। उन की लेखनी ओजस्विनी एवं शाक्तिशाली थी। अपनी लेखनी से या अपने भाषणों से पं॰ लेखराम ने कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। जब-जब भी उनकी पुस्तकें न्यायालयों में प्रस्तुत की गईं, उनके विरोधियों को ही पराजित होना पड़ा। शास्त्रार्थ करके, न्यायालयों में जा कर विरोधी पक्ष के लोग पं॰ लेखराम जी की तकरीर और तहरीर को बन्द न करवा सके तो उन कायरों ने छुरे का सहारा लेकर उनकी तकरीर और तहरीर को बन्द करवा दिया। वे भारत-वर्ष का एक प्रामाणिक इतिहास लिखना चाहते थे, किन्तु असमय मृत्यु हो जाने के कारण उन के मन की मन में रह गई। पं॰ लेखराम के अधूरे सपने अभी तक पूरे नहीं हो सके। भारत-वर्ष का एक प्रामाणिक इतिहास लिखने की जितनी अवश्कता उस समय में थी, उससे कहीं अधिक आज है। उनकी बलिदान शताब्दी पर उन के अधूरे कामों को पूरा करने का काम अब आर्य ज़नता पर है।

अध्याय - १५

श्रद्धा सुमन

६ मार्च १८९७ को सायं ७ बजे लाहौर में पं० लेखराम आर्य मुसाफिर पर घातक ने छुरे से आक्रमण कर के उन की अन्तड़ियों का अधिकांश भाग बाहिर निकाल दिया और भाग गया। रात्री ९ बजे उनको गम्भीर अवस्था में हस्पताल ले जाया गया। २ घण्टे कड़े परिश्रम से डा० पेरी उन की आँतों को सीते रहे किन्तु ७ मार्च को प्रातः २ बजे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। जब अमर बलिदानी की अर्थी उठाई गई तो २० हज़ार से ३० हज़ार की संख्या में लोग सजल आँखों से उन की शव-यात्रा के साथ थे। श्रद्धालुओं ने धर्म और जाति की सब सीमायें पार करके शहीद के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। हिन्दु, सिख, ब्राह्म, जैनी सारे दुखी थे। एक नवयुवक अपने प्यारे नेता को मृतकावस्था में देख कर मूर्छित हो गया। जिन सड़कों से शहीद की सवारी गुज़रती थी फूल ही फूल नज़र आते थे। भूमि पुष्प वर्षा से रंग गई। लाहौर के मुसलमान भाईयों की ओर से एक भाई ने यूँ कहा, "पतंगा जल गया, परन्तु स्मारक छोड़ गया।" महात्मा हंसराज ने अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये :-

"घातक इस बात में सफल हुआ कि पण्डित जी के जीवन को समाप्त कर दे, परन्तु उस ने पण्डित जी के जीवन को सहस्त्रों गुणा अधिक उज्जवल तथा पवित्र बना दिया तथा आर्य समाज की जडों को भी दृढ़ कर दिया क्योंकि हुतात्मा का रक्त, धर्म का सीमेंट है।" हैदराबाद सत्याग्रह के फील्ड मार्शल स्वामी स्वतन्त्रतानन्द महाराज ने कहा, "वे आदर्श धर्म प्रचारक थे। उनकी आवश्यकता आज भी विद्यमान है और वैदिक धर्म पुकार--पुकार कर कह रहा है - लेखराम कहाँ हो ?" स्वामी श्रद्धानन्द ६ मार्च १८९७ की काली रात को लाहौर के हस्पताल में पं० जी के उपचार की व्यवस्था कर रहे थे , उनका कथन हैं कि प्राण छोड़ने से पूर्व पं० लेखराम जी परमेश्वर के नाम का जाप करते रहे, उनके मुख मण्डल पर कोई उदासी या चिन्ता न थी। वे शान्त थे। न उन्हें घर वालों की चिन्ता थी, न मृत्यु का डर था और न कातिल पर अप्रसन्नता। उन्हें केवल वैदिक धर्म और आर्य समाज की चिन्ता थी और उनकी अन्तिम वसीहत यह थी :-

"आर्य समाज में लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए।"

शव-यात्रा का वर्णन करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं कि पं० लेखराम की

मौत ने सोई हुई हिन्दु जाति में नये प्राण फूँक दिये, "वे लोग जिन्होंने आर्य समाज मन्दिर में कभी पैर भी नहीं रखा था, इस जन समूह में दिखाई देने लगे।" और "चिरकाल से सोई हुई आर्य जाति जाग उठी और धर्म पर सर्वस्व न्योछावर करने वालों का सत्कार करना सीखने लगी।"

स्वामी श्रद्धानन्द की अन्तरात्मा की पुकार थी कि अमर शहीद पं० लेखराम का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। उसके रक्त की एक-एक बूँद से एक-एक आर्य वीर उत्पन्न होगा जो वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए अपने प्राणों की आहुति देगा। स्वामी जी की मनोकामना सत्य सिद्ध हुई। इस के ३० वर्ष पश्चात स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं अपना बलिदान देकर वीरगति पाई। धर्म एवं जाति की रक्षा के लिए शान्तिपूर्ण ढ़ंग से प्रचार करते हुए प्राणों पर खेल जाना आर्य समाज के दीवानों की परम्परा रही है। इस दृष्टि से विश्व के इतिहास से आर्य समाज का स्थान सब से उपर है। आर्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द का प्रथम बलिदान ३० अक्तूबर १८८३ को हुआ। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने तिल-तिल कर १९ मार्च, १८६० को अपना आत्म-बलिदान दिया। तत्पश्चात् ६ मार्च १८९७ को पं० लेखराम जी ने बलिदान दिया और उनके ७ वर्ष पश्चात् १९०२ में वीर तुलसी राम ने वीर गति प्राप्त की। अन्य कई वीर जैसे महाश्य राजपाल, श्यामलाल, भाई परमानन्द, सुमेर सिंह, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय इस वीर ऋंखला से जुड़ गये और अपना रक्त देकर जाति में नये रक्त का संचार कर गये।

वीर आर्य मुसाफिर की शवयात्रा में भाग लेने वाले ३० हजार लोगों का आर्य समाज के मूर्धन्य नेता, महात्मा मुन्शीराम, महात्मा हंसराज, ला० लाजपत राय, चौधरी राम भजदत्त, महाशय शान्ति स्वरुप मार्ग-दर्शन कर रहे थे। शोकातुर श्रद्धालुओं में अर्थी के लिए होड़ मच गई। महात्मा शान्ति स्वरूप के अनुसार लोगों का जन समूह एक श्रद्धा की नदी लग रही थी। अर्थी के भार से कहीं अधिक फूलों का भार था। सब से हृदय-विदारक दृश्य वह था जब श्मशान-घाट में वीर लेखराम की पत्नी को अन्मि दर्शनों के लिए बुलाया गया। उस देवी के हाथों की अँगुलियों पर उस छुरे के घाव थे जो पापी घातक से पति को बचाते हुए उन्हें हो गये थे। अन्तिम विदाई के समय अश्रु-धारा बह रही थी।

पं० लेखराम जी इतने प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी मन एवं स्वभाव से अति सरल थे। उन को कई मित्रों ने परामर्श दिया कि ऐसे अनजाने व्यक्ति को घर में नहीं रखना चहिए किन्तु पं० जी की सब से बड़ी कमज़ोरी शुद्धि प्रचार थी। हत्यारा

शुद्धि के बहाने आया था और छुरा मार कर भाग गया। पं० जी उसे भला आदमी समझते रहे और यह कह दिया करते थे, "वह व्यक्ति हमारा मित्र है। शुद्धि के लिए आया हैं। हम उसे कई दिनों से उसे देख रहे है।" शुद्ध हृदय पं० लेखराम को उस छलिये पर तनिक भी सन्देह न हुआ। वास्तव में पं० जी ने उस कसाई का नाम तक नहीं पूछा था।

किसी मुसलमान विद्वान जिन्होंने पं० लेखराम जी के व्याख्यान सुने थे और उन की पुस्तकों का अध्ययन किया हुआ था, उन्होंने पं० जी की अकाल मृत्यु पर गहरा शोक व्यक्त किया और कहा कि आर्य समाज का एक चमकता हुआ सितारा डूब गया है। आर्य समाज की एक भुजा टूट गई है और वैदिक धर्म का एक दीप बुझ गया है। उन्होंने हत्यारे के प्रति निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग कर के अभिशाप दिया :-

"ऐ हत्यारे ! तेरा सर्वनाश ! ऐ हत्यारे ! तेरा खाना खराब ! खुदा करे तेरी इच्छा पूर्ण न हो। तेरा नखले मुराद भी सूख सड़ कर जड़ से कट जावे। तेरा खाना खराब। तुम पर ईश्वर की फटकार। या खुदा ! जिसने ऐसी ज्ञान की खान को लेखक से छीना है, तू भी उसको, उस के परिवार, पत्नी व पुत्र सहित विनाश के भंवर में ऐसा डुबो कि प्रलय तक उसका कोई नाम लेवा, पानी देवा न रहे।

लाला लाजपतराय जो उस समय के उच्च कोटि के राजनैतिक एवं आर्य समाज के मूर्धन्य नेता थे, उन्होंने पं० लेखराम के प्रति अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये है :-

घातक शुद्ध होने के बहाने पं० जी के पास आया और उनके घर पर खाता पीता रहा। पं० जी ने आतिथ्य के सब कर्तव्य निभाये किन्तु हत्यारे ने उन्हें मार कर आतिथ्य का मूल्य चुकाया। ला० लाजपत राय ने कहा, "मैंने लाहौर में कभी भी कोई ऐसी बड़ी शव-यात्रा नहीं देखी जितनी बड़ी कि पं० लेखराम की अर्थी के पीछे थी। अनुमान लगाने वाले इसे बीस से पचास सहत्र मनुष्यों के बीच लगाते हैं।" उस समय लाहौर के पुलिस-कप्तान श्री कृष्टि महोदय को हत्यारे का पता लगाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रार्थना-पत्र दिया किन्तु पुलिस की छान-बीन से हत्यारे का कुछ पता न चला। पं० जी तो उसका नाम तक भी नहीं जानते थे।

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० चगुपति जी लिखते है:-

"अर्थी के साथ साथ सहस्रों मनुष्यों का तांता था। पृथ्वी पर हर स्थान पर फूल ही फूल दिखाई देते थे। गुलाब के पानी के कंटर पर कंटर बहा दिये गये। आर्य जाति में एक नयी स्फूर्ति थी, नया आवेग था। प्रतीत यह होता था कि धर्मवीर के बलिदान ने सम्पूर्ण जाति को नया जीवन प्रदान कर दिया है। पवित्रता का पारावार था। उत्साह ठाठें मार रहा था। साहस की बात आ गई थी। जिधर देखो, कर्मण्यता पूर्ण वैराग्य था।"

पं॰ लेखराम के बलिदान ने स्वामी श्रद्धानन्द को अब्दुल रसीद के रिवाल्वर की गोलियाँ खाने के लिए तैयार किया और ला॰ लाजपत राय को अँग्रेजी साम्राज्य की लाठियों के प्रहार सहने की सहनशीलता एवं कर्मठता दी। आर्य समाज के इतिहास के १८९७ के आप-पास का काल पं॰ लेखराम का काल था। इस "लेखराम काल" ने अगले "मुन्शीराम काल" की नींव रखी।

श्री ठाकुरदत्त धवन ने लिखा कि नाड़ी विशेषज्ञों के अनुसार एक विशेष नाड़ी मानव के मन्तिष्क में डर पैदा करती है किन्तु पं॰ लेखराम जी के मन्तिष्क में वह नाड़ी थी ही नहीं! उस सत्यवादी को मार डालने की कई बार धमकियां दी गईं किन्तु उन्हें कोई चिन्ता न थी, पं॰ जी धर्म पर मर मिटने वाली मृत्यु को सर्व-श्रेष्ठ मानते थे और ईश्वर कृपा से उन्हें ऐसी ही मृत्यु प्राप्त हुई। उनका बलिदान भी उस समय हुआ जब उनकी ख्याति चरम सीमा पर थी। पं॰ लेखराम को उनके जीवन-काल में ''आर्य अतिथि'' से विभूषित करने वाले भी ठाकुरदत्त ही थे। पं॰ जी के परम-मित्र ला॰ कांशीराम जी पूज्य पण्डित लेखराम जी को आर्य समाज का 'अली' कह कर पुकारते थे। उस अली ने अपनी बलि दे कर वैदिक धर्म की रक्षा की।

आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामदेव ने पं॰ लेखराम का व्याख्यान पहली बार आर्य समाज वच्छोवाली (लाहौर) में सुना और गदगद हो गये। उन्होंने पं॰ जी को अपना आदर्श मान कर आर्य समाज के क्षेत्र में उतरने का दृढ़ संकल्प किया :-

"मैं व्याख्यान सुनने लगा, सुनने क्या लगा, व्याख्यान ने मुझे स्वयं अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। पण्डित जी एक घण्टा बोले। उनका भाषण सचमुच ज्ञान का भण्डार था। अपने व्याख्यान में उन्होंने इतने वेद-मन्त्रों, फारसी, अरबी के वाक्यों और यूरोपियन विद्वानों के प्रमाण और उद्धाहरण दिये कि मैं चकित रह गया। मेरे मन में आया यदि व्याख्याता बनना हो तो इसे आदर्श बनाना चाहिए। मैंने सचमुच उन्हें अपना आदर्श बनाया।"

पारस्परिक कई विषयों पर मत-भेद होते हुये भी लाला लाजपतराय ने पं॰ जी के प्रति अति श्रद्धा व्यक्त की और कहा कि उनका व्यक्तिगत जीवन बहुत ऊँचा था और शुद्धि का पुनीत कार्य करके उन्होंने आर्य समाज के लिए जीवन का बलिदान कर दिया। पं॰ जी के बलिदान के पश्चात २३ जुलाई १८९७ को अमेरिका में छपने वाली एक पत्रिका से उद्धृत कर पं॰ जी को दी गई श्रद्धान्जली की कुछ पंक्तियां "आर्य मुसाफिर" पत्रिका में छापी गई, जिन से विदित होता है कि पं॰ लेखराम जी के बलिदान के पश्चात हिन्दुओं में जो प्रतिक्रिया एवं रोष हुआ उसका संसार-व्यापी प्रभाव हुआ। पं॰ जी के अपने ही घर में हत्यारे द्वारा मारे जाना सब के लिए दुःखदायी था और आतिथ्य-धर्म का घोर तिरस्कार था।

"भारत सेवक" पत्रिका जो जालन्धर से निकलती थी उस में निम्नलिखित सम्पादकीय लिखा गया जिसमें पं॰ लेखराम की अन्तिम यात्रा का चित्रण है :-

ऐ मौत ! ऐ क्रूर निर्दयी मौत ! किससे जाकर तेरी शिकायत करें ? किसके आगे जाकर तेरे उपालम्भों का रोना रोयें ? तेरा प्रभाव भी ईश्वर की सत्ता के समान सर्वत्र है । तेरे कार्य व व्यवस्था भी परमेश्वर के विधि विधान की भांति सर्वत्र दिखाई देते हैं । प्रत्येक शरीर तेरी पकड़ में है । प्रत्येक प्राणी तेरे मुख का ग्रास है । कहां हैं श्री रामचन्द्र जी महाराज ! मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी जिनकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहते थे । कहां हैं श्री कृष्ण जी महाराज ! जनमानस पर जिनका आधिपत्य था । संसार में जो भी जन्मा है एकदिन अवश्य यहां से प्रस्थान करेगा ही । ऐसी स्थिति में हम स्वर्गीय पं॰ लेखराम जी आर्य पथिक की मृत्यु पर क्यों न धीरज धरें ।

आह! धीरज हो तो कैसे ? यह घटना ऐसी करुणानजनक व कष्टप्रद है जिसे सुनकर कलेजा मुंह को आता है । उनका व्यक्तित्व ऐसा गुण सम्पन्न था कि हम यह कहने को तैयार हैं कि उन जैसा दूसरा व्यक्तित्व पाना अति कठिन है । उनकी अकाट्य युक्तियां, उनका प्रबल और सदैव अपराजित रहने वाला शास्त्रार्थ, उनकी इतिहास सम्बन्धी विस्तृत व गहन जानकारी, इस्लाम के बारे में उनका विशेष ज्ञान, मुसलमान मौलवियों से उनकी शास्त्रार्थ की शैली व कौशल, उनकी अडिग धर्मनिष्ठा तथा सत्य-निष्ठा ये सब ऐसे गुण हैं कि सम्भवत: किसी एक हिन्दू में न मिलें । उनके निधन से न केवल आर्यसमाज प्रत्युत समस्त हिन्दू जाति में एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है जिसे एक लम्बे समय तक भर पाना सम्भवत: कठिन होगा । इसलिए समस्त हिन्दू जाति का इस दु:खद निधन पर शोकाकुल होना रुक नहीं सकता ।

यह मृत्यु एक जीवन है जो प्रत्येक मनुष्य के भाग्य में नहीं है । हां, सच्चा बलिदान तो एक दैवी वरदान है जो परमेश्वर के प्यारों ही के प्रारब्ध में लिखा है ।

लगभग एक मास पूर्व एक व्यक्ति पं॰ लेखराम जी के पास गया और कहा कि मैं वास्तव में हिन्दू था । दो वर्ष पहले मुसलमान हो गया था । अब फिर हिन्दू होना चाहता हूँ । आप कृपा करके मुझे शुद्ध कर लीजिए । पंडित जी ने उसे वचन दिया । इसी मध्य पंडित जी को कई बारे प्रवचन आदि के लिए बाहर जाना पड़ा और वह व्यक्ति प्रत्येक बार उनकी प्रतीक्षा में पाया गया । पंड़ित जी के मित्र उस व्यक्ति से उसके नगर, ग्राम व बिरादरी आदि के बार में प्रश्न पूछा करते थे, परन्तु किसी को सन्तोषप्रद उत्तर न मिला । एक बार उसने कहा कि मैं बंगाली हूँ परन्तु यह सर्वथा झूठ था, क्योंकि उसके उच्चारण व बोलचाल में बंगाली होने का कतई कोई संकेत नहीं मिलता था । उसके मितभाषी होने से, उसको सन्देहास्पद गतिविधियों से, उसके टालने वाले अति संक्षिप्त उत्तरों से, उसकी भाव-भंगिमा उसके समस्त व्यवहार से लोगों के दिलों में उसके सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हुए, जो वे पं॰ जी पर

प्रकट करते रहे परन्तु वे यही कहा करते थे कि यदि ये सन्देह ठीक भी हो तो भई वह मेरा क्या करेगा ? मैं ऐसे दो व्यक्तियों से निपट सकता हूँ। पंडित जी प्रतिक्षण उस पर कृपा व करुणा की दृष्टि रखते थे जबकि पण्डित जी को मिलने वाले सब लोग, अड़ोसी-पड़ोसी व दुकानदार तक यह कहते कि पण्डित जी यह आपने किस व्यक्ति को साथ लगा रखा है। इसकी तो आँखों से ही धूर्तता टपकती है।

इसी मध्य एक बार वह व्यक्ति कुछ रुग्ण-सा हुआ और पण्डित जी उसे डाक्टर के पास ले गये, जिसने उसका निरीक्षण-परीक्षण करके कहा कि इसे कोई रोग तो हैं नहीं परन्तु इसके रक्त में कुछ असाधारण-सा जोश है और इस व्यक्ति को रक्त की उष्णता के कारण कोढ़ का रोग होगा अथवा यह किसी की हत्या करेगा। इस प्रकार और भी कई महत्वपूर्ण घटनायें जिनका उल्लेख हत्यारे को पकड़ने से पूर्व करना अनुचित प्रतीत होता है।

इस मास की छठीं तिथि को पण्डित जी शाहआलमी द्वार वाले अपने निवास-स्थान में चारपाई पर बैठे थे। आपकी माता तथा पत्नी भी घर पर थीं। इनके अतिरिक्त हत्यारा ही उस समय घर पर था। पं० जी अन्य कोई वस्तु लेने के लिए उठे। उस समय घातक उनके पास खड़ा हुआ था। जैसे ही पंडित जी उधर को झुके, हत्यारे ने अपने कुर्ते के भीतर से छुरी निकाल कर पण्डित जी के पहलु में झोंक दी। इसे घमुाकर बाहर निकाला। इसी के साथ अन्तड़ियां बाहर निकल आईं। पं० जी ने एक हाथ से अन्तड़ियों को दबाया और दूसरे से हत्यारे का गला दबोचा जब कि उनकी माता व पत्नी भी आ गई तथा घातक को पकड़ने लगीं। इस संघर्ष में हत्यारे ने पण्डित जी की पत्नी के हाथ पर छुरे से कई घाव किये। अपने आपको छुड़ा कर अपना कम्बल, पगड़ी, छुरा व जूता वहीं छोड़ कर भाग निकला। ऐसी बहुत-सी और भी घटनाएं है।

कुछ देर के बाद और व्यक्ति आ गये और पंडित जी को हस्पताल ले गये जहां उन्हें क्लोरोफार्म सुंघा कर सर्जरी का काम किया गया। डा० पेरी जिन्होंने घाव सिये थे कहा कि केस निराशा-जनक है। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि इतने गहरे घाव के पश्चात् भी यह व्यक्ति अब तक जीवित कैसे हैं ? सब सज्जन वहीं पहुँच गये। अन्ततः रात्रि एक बजे के लगभग पंडित जी ने गायत्री आदि वेदमन्तरों का पाठ करते हुए बड़ी बीरता व दृढ़ता से अपनी नश्वर देह का त्याग किया। इतने भीषण कष्ट के होते हुए भी न तो उनके नयनों से एक अश्रु ही टपका और न उनके मुख से हाय का शब्द ही निकला। सच्चा वीर अद्भुत पौरुष के साथ अपने पवित्र वैदिक धर्म की भेंट हुआ और वह अमर बलिदान पद प्राप्त किया जो कि सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय देन है।

अर्थी के साथ सहस्रों का जन-समूह था। कहते हैं कि म्यो हस्पताल से लेकर लोहारी द्वार तक एक जन समुद्र उमड़ पड़ा था। लोग भजन गाते हुए पुष्प

वर्षा तथा गुलाब छिड़क रहे थे । इस समूह में आर्य समाज के दोनों पक्ष, ब्राह्मसमाजी व सनातनी सभी सम्मिलित थे । नगर में से जाति के इस रक्तसाक्षी का शव ले जाया गया । यह मानकर भी कि पण्डित जी की मृत्यु से जो क्षति समस्त हिन्दु जाति की हुई है वह शीघर पूरी होने वाली नहीं हैं तथा यह हर्ष का विषय हैं कि भद्र पुरुषों का भी मृत्यु किसी प्रकार से क्यों न हो, कल्याणकारक ही होती है और इस अत्यन्त दु:खदायक अवसर पर ऐसा ही हुआ है ।

इस हृदय विदारक व जाती शोक के कारण जो हल-चल व असह्य विपदा से उत्पन्न हुआ जोश जो लाहौर में विशेष रुप से तथा समस्त पंजाब की हिन्दू जनता में सामान्यतया स्वाभाविक रूप से पैदा हुआ है - ईश्वर करे हिन्दु जाति के प्रसाद व अकर्मयण्यता को दूर करने के लिए विद्युत का कार्य करें । कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए । यदि यह बलिदान इस मृतप्राय समझी जाने वाली जाति में नवजीवन का संचार कर दे ।

सलाहाकार पत्रिका ने अपने सम्पादीय में ऐसा लिखा :-
शानिवार के दिन छ: मार्च सन् १८९६ को लाहौर में जो भीषण दुर्घटना घटी, उसे स्मरण करके कलेजा मुंह को आता है । हृदय फटा जाता है । हिन्दू जाति इस अशुभ दिन को कभी भूल न सकेगी । इसने सबके हृदय छलनी कर डाले और सबको मृतप्राय बना दिया । उस समय सूर्य ने भी मुंह छिपा लिया और इसे देखने का साहस न कर सका । संसार में अन्धेरा छा गया । सायं की बेला ने शोकाकुल हो, मातमी वेशा धारण किया । भारत भूमि के सच्चे शूरवीर हिन्दूजाति के रक्षक श्रीमान् पं० लेखराम जी के बलिदान व सच्ची आहुति का समय आ गया । घड़ी में साढ़े छ: बजे होंगे कि हमारे सच्चे रक्षक, जाति के नेता, हिन्दुओं की नौका के वीर नाविक, भारत सन्तान को स्नेह की दृष्टि से देखने वाला, इतिहास का मर्मज्ञ विद्वान अनुसन्धान कर्त्ता भरी जवानी में एक म्लेच्छ के तेज धार छुरे से अत्यन्त घायल हुआ । अन्तड़ियां बाहर निकल आईं । अनायास मुख से निकला "मार डाला ।" वीर पराक्रमी ने एक हाथ से अन्तड़ियों को थामा और दूसरे से कायर हत्यारे को पकड़ा । भयङ्कर पीड़ा के कारण हाथ कुछ कांप गया और पापी पतित बच निकला, कहीं जाकर छुप गया । उसी समय सच्चे रक्तसाक्षी के घायल तन को हस्पताल में पहुंचाया गया परन्तु गहरा घाव लगा था । बचने की आशा न रही । इतने असह्य कष्ट में भी पण्डित जी आनन्द मग्न हो रहे थे । वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए रात्रि दो बजे उनका निधन हो गया ।

जातीय नेता के इस प्रकार से घायल होने का दु:खद समाचार सायंकाल ही सारे नगर में फैल चुका था । एक हलचल सी मच रही थी । सहस्रों जन सच्ची श्रद्धा से भरपूर हृदय से जाति के हुतात्मा के दर्शन करने चले आते थे । प्रात: उनके

निधन का समाचार सुनकर कलेजे फट रहे थे। कईं एक यह सुनकर अचेत हो गये। बहुत से फूट-फूट कर रो रहे थे। शोक की कोई सीमा नहीं थी। इसी दिन हीरक जयन्ती के लिए हिन्दूओं की सभा होने वाली थी। पंजाब के मानी, श्रीमन्त, सरदार राजे, महाराजे लाहौर में एकत्र थे। हर्षो-उल्लास के इस वातावरण में यह जानलेवा दु:खद दुर्घटना घट गई। रोने-धोने वालों की संख्या जो सच्चे सुधारक को अन्तिम विदाई देने के लिए रक्तरोदन कर रहे थे, बीस सहस्र से ऊपर होगी। मार्ग में वे दुकानदार जिन्होंने कभी आर्यसमाज का मन्दिर भी न देखा था, दुकानें बन्द करके साथ हो लिये। सभी फूट-फूट कर रो रहे थे, पुष्प वर्षा भी करते जाते थे। श्मशान भूमि पहुंचकर सच्चे हुतात्मा का पवित्र शरीर वैदिक रीति के अनुसार कुछ ही समय में दृष्टि से छुपा लिया गया।

"शोक ! महाशोक ! हमारी जाति एक लाल से वंचित हो गई।" हिन्दुओं का एक तेजस्वी सूर्य अन्त हो गया। जाति-गौरव मर मिटा। वह ओजस्वी वाणी अब सुनाई नहीं देती। वह सीधी-सादी प्यारी मूर्त्त अब दिखाई नहीं देती। शोक हमारी जाति निष्प्राण हो गई तथा आत्मा निकल गई। यह वही शूरवीर था जो समस्त हिन्दू जाति की ओर से मुसलमानों व ईसाइयों को युक्तियुक्त उत्तर देता था। उसने न केवल हिन्दुओं को धर्मच्युत होने से बचाया प्रत्युत सत्य शास्त्रों का महत्व उनके मस्तिष्क पर अंकित किया। अवैदिक मतों का वास्तविक चित्र खींच कर सद्धर्म की विशेषतायें सबके सामने रखीं। कुत्रिम सोने को (तांबे-चांदी पर सोने का पानी चढ़ा दिया जाता है।) वास्तविक सोने से तुलना करके हिन्दू जाति को अपने मूल्यवान ज्ञान-भण्डार से परिचित कराया। वह सचमुच हिन्दू जाति का सर सेनापति था। जो सभी बाह्य आक्रमणों को पछाड़ता रहा तथा सभी मोर्चों पर विजय प्राप्त करके जाति पर सर्वस्व आहुत कर गया।

जाति का यह महापुरुष न केवल शास्त्रार्थ के अखाड़े का वीर पहलवान था प्रत्युत अनुसंधानकर्त्ता व प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता तथा आर्यसमाज का नामी उपदेशक था। अपकी गवेषणा से प्राचीन हिन्दू वीरों के शोर्य व उपलब्धियों का दिग्दर्शन करवाकर कि भारत-वासी उत्तम व उन्नत पूर्वजों का रक्त बह रहा है। इनके पूर्वज ऐसे सुदक्ष, सिद्धि-प्रसिद्धि प्राप्त थे कि अन्य देशों व जातियों में वैसे कौशल वाले व्यक्ति अब तक भी उत्पन्न नहीं हुए। शोक! वह गवेषक, वह गम्भीर विद्वान सदा के लिए हमसे विदा हो गया। देखने में अति साधारण परन्तु अपने भीतर अद्वितीय ज्ञान का कोश था। उसके हृदय में सत्य कूट-कूट कर भरा हुआ था। सदैव जाति हित में जुटा रहा। उसमें अदम्य उत्साह व अद्भुत पौरुष था। किसी भी धमकी का उसके साहसी हृदय पर कतई कोई प्रभाव न पड़ा। सदैव पग आगे ही आगे धरा। अति कठिन मंजिलों को पार करते हुए प्यारी जान सद्धर्म पर वार डाली।

पहले पहल जब पंजाव में पवित्र आर्य धर्म का प्रसार हुआ तो इस सत्यान्वेषी

जिज्ञासु महात्मा ने बहुत जांच-पड़ताल करके वैदिक धर्म को ग्रहण किया। दृढ़ निश्चय के साथ वह वैदिक सिद्धांतों पर चलता रहा। धर्म भाव से भूले भटकों को सन्मार्ग पर लाने के लिए राजकीय नौकरी पर भी लात मार दी। दिन-रात लेखनी से व वाणी से, जैसे भी हो सका मार्ग-दर्शन करता रहा। पंजाब व भारत का कोई बड़ा कस्बा ऐसा न होगा जहां यह सचमुच का आर्य-पथिक न पहुँचा हो तथा अपने मनोहर व्याख्यानों से उपकार न किया हो। सदैव तन, मन व धन से यही यत्न करता रहा कि सद्धर्म की उन्नति हो तथा पिछड़े भाई-बन्धु परस्पर गले मिलें। प्रायश्चित करवाने व शुद्धि करके अपने साथ मिलाने का पूरा दीवाना था। इसी धुन में अपना मूल्यवान जीवन भी आहूत कर दिया।

पंडित जी सच्चे हृदय से हत्यारे को मजलूम (जिससे अन्याय हुआ हो) समझते रहे। जब बीचाराम चैटर्जी ने उन्हें सचेत किया कि यह व्यक्ति बोलचाल से बंगाली नहीं लगता और छलिया प्रतीत होता है तो पंडित जी ने धर्म भाव से कहा कि बेचारा सितम रसीदा (जिस पर अत्याचार हुआ हो) है। सद्धर्म का अभिलाषी है। बलिदान के दिन भी जब घातक ने कहा कि उसके पेट में पीड़ा है तो उसे प्रेम भाव के साथ डा॰ विशनदास के पास ले गये तथा उपचार करवाया। डॉक्टर न कहा भी कि रोग कुछ भी नहीं है, कुछ जोश अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु उन्होंने तनिक भी ध्यान न दिया। उसी दिन वस्त्र विक्रेता से घातक के लिए कुछ कपड़ा भी क्रय किया। दुकानदार ने भी कहा कि यह व्यक्ति छलिया प्रतीत होता है परन्तु पण्डित जी ने कहा 'नहीं, बड़ा धर्मात्मा हैं।'

सायंकाल पण्डित जी ऋषि-जीवन चरित्र जो उनके पिछले दस वर्षो के श्रम का फल था - लिख रहे थे और हत्यारा समीप ही बैठा था, किसी आवश्यकता के लिए उठे तथा अंगड़ाई ले रहे थे कि घातक ने विपरीत दिशा से उनके पेट में छुरा घोंप दिया, जो लगते ही अपना काम कर गया और वह दुर्घटना घटी जो हम ऊपर लिख चुके हैं।

आर्य समाचार मेरठ की ओर से निम्नलिखित श्रद्धाँजली दी गई :-

जिस पवित्रात्मा ने सदैव सत्य के व्रत की महिमा को अनुभव किया हो। जिस मन को शुद्ध आचरण की निर्मल शक्ति से नित्य नया बल प्राप्त हुआ हो, उस निर्भय आत्मा तथा निर्भीक मन को किसी प्रकार के शारीरिक कष्ट की धमकी भयभीत कर सकती है क्या ?

कदापि नहीं। पं॰ लेखराम आर्यपथिक का असाधारण आत्मा जिसने महर्षि दयानन्द सरस्वती के बलिदान से धार्मिक जीवन में अत्यन्त दृढ़ता, अद्वितीय धीरज सीखा था। अल्पज्ञ, स्वार्थी मनुष्यों के भयानक संकेतों से क्यों कर भयभीत हो सकता था ? वैदिक धर्म के इस निष्ठावान सेवक तथा वर्तमान काल के आर्यो के सच्चे गौरव भूषण ने अपनी लौह-लेखनी से तलवार के मजहब का सामना करते हुए ऐसी शूरता दिखाई जिसकी कि अपेक्षा थी।

धर्म-युद्ध का बीड़ा उठाना तो सरल है परन्तु धर्म के लिए प्राण देना तो उन्हीं वीरों

का कार्य है जिनके हृदय में अत्यन्त धर्म प्रेम हो, जितनी अधिक ये अफवाहें फैली कि मुसलमान लोग पण्डित लेखराम की जात के पीछे पड़े हैं उतना ही अधिक पण्डित जी की आहूत होने की चाहना प्रचण्ड होती गई।

इस शूर शिरोमणि ने सिद्ध कर दिया है कि जिस धरती पर मेरा रक्त गिराया गया है, उससे सदैव मुझ जैसे अनेक उत्पन्न होंगे। हम पण्डित लेखराम जी की जुदाई से बहुत शोकाकुल होकर आज रक्त-रोदन कर रहें हैं।

भारतवासियों ! उठो ! उन्नीसवीं शताब्दी में तुम्हारे, धर्म रुपी हवन कुण्ड में दूसरी आहुति पड़ चुकी हैं। धार्मिक उत्साह की अग्नि की लपटें द्युलोक के समाचार ला रही हैं। ऐसे अमर बलिदानी की बलिदान शताब्दी के समय पर उसके काम को आगे बढ़ाने के लिए हम सब को मिल कर तकरीर और तहरीर का काम निरन्तर करते रहना चाहिए। जिस शमा को पं० जी ने जलाया था, वह कभी बुझने न पाये। जो वैदिक नाद उन्होंने बजाया था वह धीमा न पड़े। उनके सुर से सुर मिलाते हुए हम आर्य पथ के पथिक बनें।

शुभ कामनाओं सहित।

प्रिं अश्विनी कुमार शर्मा

अध्याय १६
पं० जी की कुछ कृतियों का सार

आर्य पथिक पं० लेखराम जी की स्कूली शिक्षा तो सामान्य ही थी। किन्तु स्वामी दयानन्द के सम्पर्क और वैदिक धर्म के प्रति अनोखी लग्न ने उन्हें अद्भुत वक्ता होने के साथ-साथ महान् साहित्यकार भी बना दिया। थोड़े ही वर्षों में विशाल और ओजपूर्ण साहित्य का निर्माण कर दिया। लेखनी में ऐसा बल की प्रतिपक्षी दंग रह जाए, तर्क और प्रमाण ऐसे कि संशय की गुंजाइश ही न रहे। पं० लेखराम जी की लेखनी का लोहा मानते हुए ला० लाजपतराय जी लिखते हैं :-

"वह लेखनी की तलवार से रणक्षेत्र में आया। विरोधियों की विशाल सेना में भगदड़ मच गई। किसी में साहस कहां कि जो उसके सामने जाता। उसकी लेखनी ने वही कार्य किया जो स्वामी दर्शनानन्द की लेखनी व वाणी ने मिलकर किया। कुलियात आर्य मुसाफिर उस के परिश्रम का ज्वलन्त प्रमाण है। मरने वाला मर गिया। निर्दयी व क्रूर घातक ने अपनी गर्दन पर निष्पाप की हत्या के पाप का भार यूं ही लिया। प्राण छोड़ते-छोड़ते वह सन्देश दे गया, आर्य समाज में लेखनी का कार्य बन्द न होने पावे।"

पं० जी ने अपना सारा साहित्य उर्दु में लिखा, परन्तु हिन्दी में उनके प्रायः सभी ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। उनके छोटे मोटे सभी ग्रन्थों की एक विस्तृत सूची पीछे अध्याय ११ में दी जा चुकी है। इस अध्याय में उनकी कुछ विशेष कृतियों का सार संक्षेप में देकर आर्य पथिक की लौह-लेखनी का दर्शन मात्र ही कराया जा रहा है।

१)कुलियात आर्य मुसाफिर :- ला० लाजपतराय जी ने आर्य पथिक की जिस पुस्तव 'कुलियात आर्य मुसाफिर' का उल्लेख अपनी टिप्पणी में किया है वह वास्तव में को स्वतन्त्र पुस्तक नहीं है, अपितु इस पुस्तक में आर्य पथिक की सिद्धान्त-विषय कुछ विशेष पुस्तकों, ट्रैक्टों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संग्रह किया गया है 'कुलियात आर्य मुसाफिर' में निम्न लिखित संग्रह हैं :-

१) सृष्टि का इतिहास (दो भाग) ('तारीख ए दुनिया' पुस्तक का हिन्दी अनुवाद
२) श्री कृष्ण का जीवन चरित्र
३) स्त्री शिक्षा
४) आर्य, हिन्दू और नमस्ते की खोज
५) मुर्दा अवश्य जलाना चाहिए
६) पतितोद्धार
७) धर्मप्रचार (लेख)
८) पुनर्जन्म प्रमाण - (सम्पूर्ण)

९) पुराण किसने बनाए
१०) साँच को आँच नहीं
११) आर्य समाज में शान्ति का सत्योयाम और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन
१२) क्रिश्चियन मत दर्पण
१३) सदाकत ए इल्हाम
१४) सत्य धर्म का सन्देश
१५) निजात की असली तारीफ़ (शास्त्रार्थ)
१६) सदाकते ऋग्वेद
१७) नियोग का मन्तव्य
१८) सत्य सिद्धान्त और आर्य समाज की शिक्षा

इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थमाला के आरम्भ में अनुवादक श्री पं॰ जगतकुमार शास्त्री तथा श्री पं॰ शान्तिप्रकाश जी की भूमिका के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखी गई भूमिका, आर्य पथिक एवं उनकी पत्नी के शिक्षादायक जीवन की भाँकी को भी दर्शाया गया है । सर्वप्रथम इस अनुवाद का प्रथम खण्ड श्री रामचन्द्र जावेद के सम्पादन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरूदत्त भवन, जालन्धर से ऋषि निर्वाग दिवस १५ सवम्बर, १९६३ को प्रकाशित हुआ । द्वितीय खण्ड का प्रकाशन सभा २५ अगस्त १९७२ को किया गया । उर्दू में सभा इन्त १८९६ ई॰ अनेक प्रकाशकों ने भी उन ग्रन्थमाला को प्रकाशित किया, उनके अनुवादक भी भिन्न-भिन्न रहे हैं ।

२) स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र :- श्री पं॰ लेखराम जी का यह वह अमर ग्रन्थ हैं, जिसके कारण उन्हें 'आर्य मुसाफिर' या 'आर्य पथिक' बनना पड़ा । पण्डित जी ने सम्पूर्ण भारत में घूम-घूम कर, जहाँ कहीं से भी ऋषि के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी मिल सके, उस उस वन-पवर्त-ग्राम-गली-कूचे में पहुँच कर ऋषि के जीवन चरित्र लिखने का महान् उद्यम किया हैं । यह कार्य साधारण काम नहीं था । परन्तु ऋषि भक्ति ने उनके लिए इस कार्य को वैसा ही सरल और अनन्दमयी बना दिया था, जैसा कि रामभक्ति ने हनुमान् के लिए सीता की खोज का कार्य सरल और आनन्द देने वाला बना दयिा था । धन्य है यह आर्य समाज का धर्म धुरन्धर ऋषिभक्त हनुमान !

यद्यपि इस जीवन चरित्र की कुछ घटनाओं या घटनाओं की ऐतिहासिक तिथियों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के प्रामाणिक जीवन लेखक विद्वानों में मतभेद हैं, परन्तु इससे आर्य पथिक के ऋषि जीवन खोज के कार्य का मूल्यांन कम नहीं हो जाता हैं । उन्होंने जो भी लिखा ऋषि-सम्पर्क में आने वाले, या उनका दर्शन करने वाले व्यक्तियों से पूछ-ताछ करके ही लिखा हैं, उनमें कुछ छली भी हो सकते थे, कुछ की स्मृति कमजोर भी हो सकती थी । ऋषि दयानन्द के सभी प्रामाणिक जीवन लेखकों ने आर्य पथिक पं॰ लेखराम के इस जीवन चरित्र को आधार बनाकर ही लिखा है और उन लेखकों ने मुक्तकण्ठ से आर्य पथिक के इस कार्य की सराहना भी की हैं । क्या ठनकी

खोज का यह कम मूल्यांकन है ?

पं॰ लेखराम जी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि वे अपने विशाल अनुसन्धान प्रकाशित रुप में देख सकते। इसे एकरूप और कृतबद्ध करने से पूर्व ही उनका बलिदान हो गया। उस समय उनकी आयु मात्र ३९ वर्ष की थी। उनके मरण उपरान्त इस विशाल तथ्यभूत सामग्री को मास्टर आत्माराम अमृतसरी ने महात्मा मुन्शीराम जी के आदेश पर क्रमबद्ध कर इसका सम्पादन किया और पं॰ रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद करवाकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इसे पहली बार प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त किया।

३) सृष्टि का इतिहास :- श्री पं॰ लेखराम जी ने १८९० ई॰ में 'तारीख-ए-दुनिया' नाम से उर्दू में जो पुस्तक लिखी थी, उसी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद 'सृष्टि का इतिहास' नाम से किया गया। पुस्तक में तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में विद्वान लेखक ने बड़ी खोज करके संसार में प्रचलित २३ संवतों का इतिहास दिया हैं। जिनके नाम कालक्रम के अनुसार इस प्रकार हैं :-

१) आर्य संवत् या सृष्टि संवत् २) चीनी संवत् ३) खिताई संवत् ४) पारसी संवत् ५) कालड़िया संवत् ६) मिस्री संवत् ७) इबरानी संवत्· ८) कलि(मुसी) संवत् ९) युधिष्ठर संवत् १०) नूह संवत् ११) इब्राहीमी संवत् १२) स्पार्टा संवत् १३) मूसा संवत् १४) दाऊदी संवत् १५) यूनानी संवत् १६) रुमी संवत् १७) नाबूसारी संवत् १८) बौद्ध या शाक्यमुनि संवत् १९) सिकन्दर संवत् २०) विक्रमी संवत् २१) ईस्वी संवत् २२) शालिवाहन संवत् २३) गुहम्मदी या हिजरी संवत्

इन संवतों के अतिरिक्त भी बहुत से संवत् संसार में मिलते हैं। परन्तु अधिक प्रसिद्ध इतने ही हैं। ये संवत् कब और कैसे आरम्भ हुए, इसका संक्षेप में पूरा विवरण इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में मिलता हैं।

पं॰ लेखराम जी ने अथर्ववेद, सूर्यसिद्धान्त तथा कई विदेशी विद्वानों द्वारा लिखी पुस्तकों के आधार पर प्रमाणित किया हैं कि एक कल्प या सृष्टि की कुल आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष (४,३२,००,००,०००) होती हैं। परमात्मा इतने वर्षों बाद सृष्टि का प्रलय करके फिर वैसी ही सृष्टि का निर्माण करता हैं। कलियुग ४,३२,००० वर्ष का होता हैं। कलियुग से दगना द्वापर युग, तिगुना त्रेतायुग और चौगुना सतयुग होता हैं। वर्तमान कलियुग के ४९९० वर्ष (१८९० ई॰ तक) बीत चुके हैं।

दूसरे खण्ड में भारत के प्राचीन ग्रन्थों-मनुस्मृति, महाभारत, सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि, वेदान्त शास्त्र, अष्टाध्यायी, छः दर्शन व चाणक्य नीति के रचना काल पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया हैं। पं॰ जी ने प्रमाणित किया हैं कि महाभारत की रचना ईसा से ३१ सौ वर्ष पूर्व हुई थी। और आरम्भ में इस में केवल २४ हजार श्लोक ही थे। कुछ का मत हैं कि महर्षि ब्यास जी ने तो ४४०० श्लोक ही बनाए थे, शेष ४६०० श्लोक

उनके शिष्यों ने बनाए। राजा विक्रमादित्य के समय में इनकी संख्या बढ़कर २०,००० हो गई थी और राजा भोज के समय में ये ३०.००० हो गए थे। इस प्रकार व्यास जी का 'भारत' ग्रन्थ 'महाभारत' बन गया।

तीसरे खण्ड में पं॰ जी ने पहले दो खण्डों जिन विशेष प्रसिद्ध विद्वानों और भारत के प्राचीन ग्रन्थों का इतिहास नहीं आ सका, उनका इतिहास दिया है।

पं॰ लेखराम जी ने विभिन्न प्रमाणों से सिद्ध किया हैं कि आदि शंकराचार्य ईसा से लगभग तीन से वर्ष पूर्व हुए, जो ३२ वर्ष तक जीवित रहे। उनके बाद उन द्वारा स्थापित चार मठों की गद्दी पर जो भी बैठे सभी शंकराचार्य कहलाए। युधिष्ठिर संवत् के अनुसार आदि शंकराचार्य का जन्म २१५७ युधिष्ठिर संवत् में हुआ और ३२ वर्ष की आयु पाकर २१८९ यु॰ संवत् में उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। दूसरा शंकराचार्य ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुआ। जिसका शिष्य भर्तृहरि हुआ , जो राजा विक्रमादित्य का भाई था। जिसने नीति-शतक, वैराग्य-शतक और श्रृंगार शतक की रचना की थी।

पं॰ जी के अनुसार वेद संसार का सबसे पुराना धर्म ग्रन्थ हैं, ये संख्या में चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व-वेद। सृष्टि के आरम्भ में ही चार ऋषियों पर ये चार वेद प्रकट हुए। ऋग्वेद (१०५१८ मन्म) अग्नि ऋषि पर, यजुर्वेद (१८६७ मन्म) वायु ऋषि पर, सामवेद (१८७३ मन्म) आदित्य ऋषि पर तथा अथर्ववेद (५८४७ मन्म) अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुआ। इस प्रकार चारों वेदों की मन्म संख्या २०३१३ हैं।

आर्या-वर्त में लिखने की कला का विकास कब हुआ ? इस विषय पर भी इस अन्तिम खण्ड में पं॰ जी ने अच्छा प्रकाश डाला हैं। उन्होंने सिद्ध किया हैं महाभारत काल में राजा युधिष्ठिर के समय से बहुत पूर्व ही भारत में लिखने की कला का विकास हो चुका था। राज्यसभाओं और पाठशालाओं आदि में इसका भरपूर प्रयोग होता था।

रामायण का काल महाभारत से बहुत पहले द्वापर और त्रेता का सन्धि काल है, जिसमें दशरथ पुत्र श्री राम का जन्म हुआ हैं। अर्थात् द्वापर के १६४,००० + वर्त्तमान कलियुग के ५०९६ = ८,६९,०५७ वर्ष के लगभग रामायण का रचनाकाल सिद्ध होता हैं।

विद्वान लेखक ने प्रमाण पूर्वक सिद्ध किया है कि १६ पुराणों और १८ उपपुराणों की रचना व्यास जी ने नहीं की है। अपितु महाभारत के बहुत बाद में विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग पुराण बनाए। भगवत पुराण जयदेव के भाई बोपदेव ने रचा हैं। बोपदेव ने 'मुग्धबोध' नामक एक व्याकरण ग्रन्थ की रचना भी की हैं। बोपदेव महाराजा भोज (५४१ विक्रम संवत्) के समय में हुए हैं।

पुस्तक के अन्त में विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं की विक्रम संवत् के अनुसार एक लम्बी सूची दी है, जो पं॰ लेखराम जी की लग्न और अनुसन्धानकी प्रवृति का मुँह बोलता चिन्ह उपस्थित करता हैं। यह एक बहुत ही खोजपूर्ण सामग्री से भरा हुआ ग्रन्थ है।

४) श्री कृष्ण जी का जीवन चरित्र :- श्री पं॰ लेखराम जी की यह छोटी सी पुस्तक श्री कृष्ण जी के गौरव पूर्ण चरित्र को समर्पित हैं। श्री कृष्ण चन्द्रवंशी राजकुल में लगभग ५ हज़ार साल पूर्व मथुरा के राजा कंस की बहन देवकी के गर्भ से पैदा हुए थे। श्री कृष्ण के पिता चन्द्रवंशी राजा शूरसेन के पुत्र वसुदेव थे। इसीलिए कृष्ण को वासुदेव भी कहा जाता हैं। कंस बड़ा ही दुराचारी और अधर्मी राजा था। कंस अपने पिता राजा उग्रसेन को बन्दी बनाकर राजगद्दी पर बैठा था। कंस की माता का नाम पवनरेखा था। कंस को अपनी बहन देवकी के विवाह पर आकाशवाणी हुई थी कि उसी की सन्तान तुम्हारे पापों का अन्त करेगी। अत: भय से कंस ने देवकी और वसुदेव को कारागार में डाल दिया। जो भी सन्तान देवकी को पैदा होती, कंस उसे मार देता। परन्तु सौभाग्यवश देवकी को जब आठवाँ गर्भ हुआ, से कृष्ण का जन्म हुआ। तो माता-पिता दोनों ही बचाने की चिन्ता में उसे यमुना पार नन्द-यशोदा के घर छोड़ आए और उनकी तभी पैदा हुई लड़की को अपनी सन्तान बनाकर कंस को सौंप दिया। कृष्ण यशोदा के पुत्र बलराम के साथ बड़ा होने लगा। उसी ने बड़े होकर कंस का वध किया।

पं॰ लेखराम जी श्री कृष्ण के चरित्र को बड़ा पवित्र और आदर्श मानते हैं। भागवत पुराण में कही गई रास लीलाओं को वे कल्पित बताते हैं क्योंकि महाभारत में श्रीकृष्ण के चरित्र के सम्बन्ध एक भी ऐसी घटना नहीं मिलती। महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण जी ने ५७ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचार्य का पालन किया था। ऐसे आदित्य ब्रह्मचारी के मुख से ही श्रीमद्-भगवद् गीता जैसा उपनिषद्-सार रूप आध्यात्मिक अमृत बह सकता है। चन्द्रवंशी श्री कृष्ण की वंशालवली इस प्रकार दी गई हैं :-
१) चन्द्र २) बुध ३) पुरूखा ४) आयु ५) नहुप ६) ययति ७) यदु ८) क्रधु ९) कृजिनवान् १०) श्वाटि ११) रूशेकु १२) चित्ररथ १३) शशबिन्दु १४) पृघुश्रवा १५) रुचक १६) ज्यामथ १७) विदर्भ १८) क्रथ १९) कुन्ति २०) धृष्ठि २१) निर्कृत २२) दशार्ह २३) वयोम २४) जीभूत २५) विकृति २६) भीमरथ २७) नवरथ २८) दशरथ २९) करंभि ३०) देवरात ३१) देवदाम ३२) मधु ३३) अनु ३४) पुरुहोम ३५) आयु ३६) सात्व ३७) वृष्णि ३८) चित्ररथ ३९) विदूरथ ४०) शूरसेन ४१) वसुदेव ४२) कृष्ण।

५) स्त्री-शिक्षा - यह पुस्तक छोटी परन्तु स्त्री-शिक्षा की दृष्टि से बड़े ही महत्व की है। पुस्तक में पाँच अध्याय हैं। भूमिका रुप पहले अध्याय में उस समय के बारत में स्त्री-जाति की दुर्दशा पर शोक प्रकट करते हुए उन्हें शिक्षित करने पर जोर ही नहीं दिया, अपितु कक्षा १ से ६ तक का एक उपयोगी पाठ्यक्रम भी दिया है। वे स्त्री-शिक्षा को सम्पूर्ण समाज की उन्नति का साधन मानते हैं। दूसरे अध्याय में भारत की विदुषी और आदर्श चरित्र वाली देवियों के जीवनवृत्तान्त और उनसे मिलने वाली शिक्षाओं का चित्रण किया है। पुस्तक में मैत्रेयी, गार्गी, तारा, मन्दोदरी, सीता, शकुन्तला, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपती तथा संयोगिता का जीवन-वृत्तान्त दिया गया है।

तीसरे अध्याय में शिशु-पालन की विधि, चतुर्थ में घरेलु-प्रबन्ध तथा पाँचवे अध्याय में स्त्रियों के लिए उपयोगी पूजा-पद्धति का वर्णन किया गया है।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में पण्डित जी के ये वचन माननीय हैं :-
सबसे बड़ा कार्य स्त्री के लिए शिक्षा और विद्या का होना है । क्योंकि प्रथम तो स्त्री-पुरूष का स्वाभाविक सम्बन्ध ही कुछ कम नहीं, बहुत अधिक है। दूसरा यह न्याय नही मुक्त हनीं कि जिस बात से एक लाभ उठाए, उससे दूसरा वंचित रह जाए। तीसरा मनुष्य की दृष्टि से जो पद पुरुषों को प्राप्त हैं, वही पद स्त्रियों को भी प्राप्त हैं । वही बुद्धि विस्तार, वही ऐन्द्रियक शक्ति, वही स्मरण शक्ति की पहुँच, वही देखने की शक्ति । परन्तु शोक कि हमारे भाइयों को शिक्षा-पद्धति स्मरण नहीं।

६) 'आर्य', 'हिन्दू' और 'नमस्ते' की खोज :- यह एक छोटा सा ट्रैक्ट है । श्री पं॰ लेखराम जी ने स्वामी दयानन्द जी महाराज के विचारों को ही और अधिक प्रमाणों के साथ इस पुस्तक में रखा हैं कि 'हिन्दु' शब्द आक्रमणकारी यवन लोगों ने आर्यो को नीचा दिखाने के लिए गढ़ा है । अरबी-फारसी के शब्दकोषों में इसीलिए 'हिन्दू' शब्द का अर्थ बहुत बुरे लोगों के लिए किया गया हैं, जो सपष्ट ही शत्रुता की भावना से प्ररित हैं । अतः श्री पं॰ लेखराम जी ने भी भारत के प्राचीन ग्रन्थों में पाए जाने वाले 'आर्य' शब्द को उचित ठहराया हैं, जिसका अर्थ सभ्य, श्रेष्ठ तथा उन्नतिवादन के लिए हैं ।

इसी प्रकार अभिवादन के लिए सम्पूर्ण विश्व में जो भिन्न-भिन्न शब्द या वाक्य प्रचलित हैं, उनमें 'नमस्ते' = नमः + ते का अर्थ है मैं आपको नमन करता हूँ , मैं आपका आदर करता हूँ । पं॰ लेखराम जी ने आर्य और नमस्ते शब्द के बहुत से प्राचीन प्रयोग वेद, पुराण, गीता आदि में से लेकर अपने विचार को पुष्ट किया हैं । जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय को अपने लिए 'आर्य' शब्द का प्रयोग करना तथा अभिवादन के लिए हर छोटे-बड़े को आपस में 'नमस्ते' शब्द का ही प्रयोग करना उपयुक्त है ।

भारत के पुराने ग्रन्थों में यहाँ के निवासियों के लिए कहीं भी 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, जबकि 'आर्य' शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है । इसी प्रकार आपस में अभिवादन के लिए भी 'राम-राम', 'जय-सीता राम', 'नमस्कार' आदि का कहीं कोई प्रयोग नहीं मिलता और 'नमस्ते' शब्द का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता हैं । इससे भी यहीं सिद्ध होता हैं कि 'आर्य' और 'नमस्ते' शब्द का प्रचलन करना ही उचित है ।

७) मुर्दा अवश्य जलाना चाहिए :- मृतशव के साथ भिन्न-भिन्न देशों और जातियों में भिन्न-भिन्न व्यवहार होता हैं । आर्य लोग प्राचीन काल से मृत शरीर को जलाते हैं । यहूदी, ईसाई, मुहम्मदी भूमि में गाढ़ते हैं । पारसी पशुओं के आगे डाल देते हैं । पूर्व के मिश्रवासी वायु में अथवा मसाला (औषधि) लगाकर शुष्क कर देते थे । कुछ लोग मृतशव को पानी में बहाकर उसका अन्तिम कर्म करते हैं । पं॰ जी से शास्त्रीय प्रमाणों, तर्कों तथा उपयोगिता के आधार पर स्पष्ट किया हैं कि इस सभी विधियों में मृतशव का जलाना ही श्रेष्ठ हैं । यजुर्वेद (४०-१५) में भी लिखा हैं :-

'भस्मान्तं शरीरम्'

अर्थात् इस मनुष्य शरीर का मनुष्य से सम्बन्ध मृतशव को जलाने और भस्म कर देन तक ही है।

मुर्दा जलाने के मुख्य रूप से ९ लाभ लिखते हैं, जिनमें से कुछ मुख्य लाभ ऐसे हैं :-

१) मृतक को जलाने से कम भूमि में ही लाखों-करोड़ो शवों के दाहकर्म किए जा सकतें हैं। दफनाने में तो हर लाश के लिए नयी जगह चाहिए, जो सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

२) दफनानें पर कबरों का निर्माण बढ़ता हैं और जड़पूजा को बढ़ावा मिलता है।

३) कब्रिस्तान में लाशें दबी पड़ी रहती हैं। सड़ कर दुर्गन्ध पैदा करती हैं। इस प्रकार वायुमण्डल गन्दा होता है। जबकि जलाने में उससे बहुत कम दुर्गन्ध पैदा होता हैं, और गर्म वायु के साथ मिलकर दुर्गन्ध ऊँचे आकाश में चला जाता हैं। जिससे प्राणियों के जीवन को इतना कष्ट नहीं होता।

१९९१ ई० में प्रिंस आफ वेल्ज की अध्यक्षता में स्वास्थय रक्षक कांग्रेस, इंगलैण्ड ने एक प्रस्ताव रखा कि मृतशव को दफनाने की अपेक्षा उसको जलाना ही अधिक ठीक हैं।

पशुओं के आगे डालना, पानी में बहाना, औषध लगाकर शव को रखना आदि विधियाँ भी उपयोगी नहीं हैं। अतः मृतशव को जलाना ही सबसे अच्छा हैं।

८) **पतितोद्धार** :- इस ट्रैक्ट में उन बातों की ओर आर्यों का ध्यान दिलाया हैं, जिनके कारण आर्य (हिन्दु) लोग मुसलमान हो गए। उन कारणों को दूर कर उन भूले भटके विधर्मी बन गए भाईयों को पुनः उदार मन से वैदिक धर्म में वापस ले आने पर जोर दिया गया है। तथा हर प्रकार के नशे, मांसाहार, दुराचरण से बचकर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य बनने और बनाने पर बल दिया हैं। आर्यों को जगाया है।

९) **पुर्नजन्म प्रमाण** :- यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण, खोजपूर्ण तथा पर्याप्त बड़ा ग्रन्थ है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में विरोधियों के आक्षेपों के उत्तर हैं। इसमें चार प्रकरण हैं :-

प्रथम प्रकरण - जीवात्मा का स्वरूप और शरीर से उसका सम्बन्ध
द्वितीय प्रकरण - ईसाईयों के आक्षेपों का उत्तर
तृतीय प्रकरण - मुसलमानों के आक्षेपों का उत्तर
चतुर्थ प्रकरण - ब्रह्म समाजियों के आक्षेपों के उत्तर

द्वितीय भाग में बड़ी खोजपूर्ण तथा आलोचनात्मक सामग्री दी गई है, इसमें नौ प्रकरण हैं :-

१) युक्तिचों और वेदाति शास्त्रों के प्रमाणओं से पुनर्जन्म मत की सिद्धि
२) पारसी मत और पुनर्जन्म

३) बुद्धमत और पुनर्जन्म
४) विभिन्न मत-मतान्तों के विद्वानों के पुनर्जन्म पर मन्तव्य
५) बाईबल से पुनर्जन्म का समर्थन
६) कुरान से पुनर्जन्म का समर्थन
७) कुछ इस्लामी विद्वानों के मन्तव्य
८) पुनर्जन्म पर कबीर जी व बाबा नानक जी के विचार
९) स्वामी दयानन्द का पुनर्जन्म पर मन्तव्य

इनके अतिरिक्त दो लघुप्रकरणों तथा एक अन्तिम लेख के साथ पुस्तक समापन किया गया हैं ।

जीवात्मा एक प्रकृति के भिन्न, चेतन द्रव्य हैं । जीवात्मा को फारसी में रूट तथा अंग्रजी में सोल *(Soul)* कहते हैं । वेद, गीता, उपनिषद्‌ आदि शास्त्रों में जीवात्मा को अजर, अमर और नित्य बताया हैं । पर जीवात्मा पुराने कपड़ों को छोड़कर नए कपड़ों की तरह, पुराना शरीर छोड़कर नया शरीर धारण करता रहता हैं । जीवात्मा के इस विश्व के सभी अति प्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थों, मत-मतान्तरों तथा विभिन्न सन्तों, धर्शनिकों की सासी में पुनर्जन्म को प्रमाण और मुक्तिपूर्वक सिद्ध किया है । लेखक प्राय: सभी मत-मतान्तरों के धर्म-ग्रन्थों और उनके विद्वानों के विचारों को आधार बनाकर बलपूर्वक यह तथ्य समझाने में सफल हुआ है, कि पुनर्जन्म एक संच्चाई है, जो सारे संसार में सभी मतों व जातियों में पाया जाता है। **९) जीवात्म की शरीर से पृथक्‌ सत्ता :-** जीवात्मा का शरीर से सम्बन्ध तो अवश्य है परन्तु शरीर ही जीवात्मा नहीं । जीवात्मा तो शरीर से पृथक्, कारण रहित और स्वत: ही चेतन अनादि सत्ता है । इस सम्बन्ध में मान्यवर सर सैजय अहमद खाँ साहब का कथन बड़ा ही तर्कपूर्ण है । वे लिखते हैं :-

"यद्यापि इस वस्तु (रूह-जीवात्मा) का मनुष्य के शरीर से भी कुछ सम्बन्ध है, परन्तु जब अधिक ध्यान देकर विचार किया जाए, तब उस सम्बन्ध के होने पर भी यह शरीर से सर्वथा ही बे-सम्बन्ध है । मनुष्य कभी-कभी ऐसा ध्यान-मग्न होता है कि तब सब कुछ भूल जाता है, फिर भी अपने आप को नहीं भूलता । इस विचार के अनुसार यह भी सम्भव है कि मनुष्य का यह दिखाई देने वाला शरीर तो नष्ट हो जाए, परन्तु जो वस्तु इसके अन्दर है, वह वैसी की वैसी ही बनी रहे । फिर यदि वह वस्तु थोड़े ही नष्ट होना है, तो अन्तरात्मा इस बात को स्वीकर नहीं करता कि उस शुद्ध स्वरूप सर्वोपरि अनादि और अनन्त परमेश्वर ने यह सम्पूर्ण चित्र-विचित्र अत्भुत जगत्‌ एक ऐसी सत्ता अस्तु, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह वस्तु (जीवत्मा) भी एक अनादि सत्ता है । यह नष्ट होने या लुप्त होने वाली वस्तु नहीं है।"

(तसानीक अहमदिया, हिस्सा अव्वल, बतीनुल्कलाम पृष्ठ १५७, सन्‌ १८६१ ई॰)

पण्डित जी की यह युक्ति देखिए, जो एक साधारण व्यक्ति को भी शरीर से पृथक्‌ जीवात्मा की सत्ता मानने के लिए बाध्य करती है - "शरीर का पाँव आदि जो भाग कट जाता है और कटकर शरीर से पृथक हो जाता है, न तो शरीर से पृथक हुआ भाग अपने शरीर को

जानता है, न अपने सुधार का कोई यत्न करता है, न यह जानता हैं कि मैं कहाँ पड़ा हूँ ? न ही वह अपनी रक्षा की चेष्या करता है। बस जड़ होकर पड़ा रहता है। और शीघ्र ही अथवा कुछ देर बाद गल सड़ कर मिट्टी हमें मिल जाता है। परन्तु वह मनुष्य, जिसका कोई अंग कट कर पृथक् हो जाता है, अपने अन्य अंगो से काम लेता है। और अपने लोक व्यवसायों का अनुष्यान करता है। वह अपनी इन्द्रियों का संचालन करता और उन से काम करवाता है..."

(कुलियात आर्य मुसाफिर, पुनर्जन्म प्रमाण, पृष्ठ २३८, आत्म सिद्धि में दूसरा प्रमाण)

इस युक्ति से जीवात्मा की शरीर से पृथकता अपने आप स्पष्ट हो जाती है।

जीवात्मा शरीर से पृथक् है और मस्तिष्क की अन्तर-गुफा में उसका निवास है। मस्तिष्क स्वयं में चेतन अथवा इच्छा-प्रयत्न आदि शक्तियों से संयुक्त नहीं है। चेतनता और इच्छा आदि सम्पूर्ण शरीर का शासक है। सम्पूर्ण शरीर जिस का एक अंग मस्तिष्क भी है, जीवात्मा प्रशासित है। कान सुनते रहते है, आँखे देखती रहती है, मस्तिष्क सोचता रहता है- परन्तु जीवात्मा इन सबका नियन्त्रण करता है। शरीर के प्रत्येक अंग का यह शक्तिशाली संचालक कोई जड़ पदार्थ नहीं, जीवात्मा हैं। अत: जिसके रहने से यह शरीर और इस की सब इन्द्रियाँ काम करती हैं, व्यर्थ हो जाती है, उसको ही जीवात्मा कहते है। शरीर से पृथक जीवात्मा के अस्तित्व का यह एक मोटा उदाहरण है। प्रत्येक मनुष्य अपने अनुभव से इसे जानता भी है।

पुनर्जन्म क्या है ?

जीवात्मा की शरीर से अलग सत्ता होना तो ऊपर दिए गए उदाहरणों से सपष्ट होता है। परन्तु यह पुनर्जन्म क्या है ? वास्तव में जीवात्मा, मनुष्य-पशु-पक्षी आदि की जिस योनि में भी शरीर धारण करता है, वह उसका मनुष्य योनि में किये गये पूर्वजन्मों का फल ही होता हैं। मनुष्य योनि कर्म और भोग दोनों प्रकार की योनि है। इस योनि में यह कर्म भी करता हैं, तथा इस जन्म के कुछ कर्मों का फल भी भोगता हैं। मनुष्य जिसे भाग्य या किस्मत कहता है, वह उसके पूर्वजन्मों में किए उन कर्मों का फल ही होता है जिन कर्मों का फल वह उन-उन जन्मों में नहीं भोग सका। इस प्रकार कर्म करने और फल भोगने की यह माया जीवात्मा के मोक्ष तक ऐसी ही बनी रहती है। अत: जीवात्मा फलभोग से शेष रह गए अपने कर्मों के फलभोग के लिए ईश्वरीय व्यवस्था के अधीन होकर, जिस किसी योनि में भी नया शरीर धारण कर लेना ही पुनर्जन्म है। जो मनुष्य 'भाग्य' या 'किस्मत' को अपने जीवन काल में अनुभव करता है। और शायद सभी अनुभव करते हैं। वह दूसरे शब्दों में पुनर्जन्म को स्वीकार करता है क्योंकि पूर्वजन्मों के फलभोग से शष रह गए कर्मों का इस जन्म में फल मिलना ही तो 'भाग्य' या 'किस्मत' है।

जीवात्मा का एक शरीर से स्थाई सम्बन्ध नहीं होता। जैसे एक पक्षी किसी वृक्ष की शाखा पर बैठता हैं, दूसरी पर तीसरी पर बैठता है और उड़ जाता हैं, उसी प्रकार जीवात्मा भी इस शरीर पर बैठता हैं और उड़ जाता है। जीवात्मा का शरीर में आना और जाना भगवान् के अटल नियमों के अनुसार ही होता है। अत: जीवात्मा के शरीर-त्याग को ऐसा ही समझना चाहिए जैसा पक्षी का शाखा त्याग करना होता है।

पुनर्जन्मवाद का मूल आधार मनुष्य के कर्म हैं और ईश्वर की दया तथा न्यायकारिता से बी इसका समर्थन होता है। पण्डित लेखराम जी का तो स्पष्ट मन्तव्य है कि पुनर्जन्म को न मानना एक प्रकार से ईश्वर की पवित्र और सर्वोपरि सजा को न मानना ही है। यह उचित भी है क्योंकि जीव कर्म करने में तो बहुत सीमा तक स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में तो ईश्वरीय व्यवस्था के अधीन ही है। और पुनर्जन्म कर्मफल के भोग की ईश्वरीय व्यवस्था का ही दूसरा नाम है। अत: पुनर्जन्म

को न मानना स्पष्ट ही ईश्वर की सत्ता से इन्कार करना है।

लेखनी के धनी और तर्क के तीर छोड़ने में कुशल आर्य मुसाफिर ने अपनी इस पुस्तक में प्रत्येक मतवादी के आक्षेपों उन्हीं की पुस्तकों से पुनर्जन्म के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत कर पुनर्जन्म के वैदिक मन्तव्य को पुष्ट किया है। निश्चय ही आर्य मुसाफिर ने यह पुस्तक लिख कर विद्वानों, दार्शनिकों तथा आम जनता का बहुत उपकार किया हैं। यह तो पुस्तक का दिग्दर्शन मात्र है, उसका असली स्वाद तो पूरी मूल पुस्तक पढ़ने पर ही पाठक को प्राप्त हो सकेगा।

१०) तकजीव ए बुराहीन ए अहमदिया :- पण्डित जी की वह पुस्तक है, जिसने उनको सारे देशा में प्रसिद्ध कर दिया। उसमें उन्होने कादियानी के ढोल का पोल खोल दिया और वैदिक धर्म के महत्त्व को स्थापित किया। यह ग्रन्थ अहमदी युक्तियों का खण्डन करता है।

११) नुस्खा ए ख्ब्त ए अहमदिया :- यह पुस्तक 'सुरमा ए चश्म आरिया' के उत्तर में लिखी गई। आर्य लोगों की तो बात ही क्या, स्वयं मुहम्मदी लोगों ने स्वीकार किया कि पं॰ जी की यह पुस्तक बेजोड़ हैं और इसके मुकाबले की कोई और पुस्तक नहीं। अहमदी मत का खण्डन अनेक प्रमाणों सहित और बहुत ही तर्क पूर्ण ढंग से किया गया हैं। इसके प्रकाशन से मिर्जा जी पण्डित जी के जानी दुस्मन बन गए और उन्हें मार देने की धमकियाँ देने लगे। एक कवि ने पण्डित जी की सराहना करते हुए यूँ कहा :-

मिटाया तूने ख्ब्त ए कादियानी एक नुस्खे में।
तेरे इस लेख का अकसीर हो जाना मुबारक हो ।।

१२) हुज्जत ए इस्लाम (यवन मत समीक्षा) :- इस ग्रन्थ में पण्डित जी ने इस्लाम मत की बेतुकी आयतों का खण्डन किया हैं और वैदिक धर्म को सर्वश्रेष्ठ बतलाया हैं। कई मुसलमान इस पुस्तक को 'नुस्खा ए ख्ब्त ए अहमदिया' से बड़कर मानते थे।

१३) साँच को आँच नहीं :- यह पुस्तक श्री शिवनारायण प्रसाद द्वारा लिखित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' की महिमा के उत्तर में लिखी गई हैं। प्रसाद जी ने स्वामी जी, उनके ग्रन्थों या उन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर, जितने भी आक्षेप किए हैं या प्रश्न उठाए हैं, उन सबका क्रमवार प्रमाण-तर्क व यक्ति के साथ पण्डित जी ने मुँह तोड़ उत्तर दिया हैं।

१४) आर्य समाज में शान्ति का सत्योपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन :- यह पुस्तक मांसाहार के पक्षधर विद्वानों ने 'रामायण' के आधार बनाकर श्री रामचन्द्र जी पर भी मांसाहार का आरोप लगाया है। विद्वान लेखक ने न केवल 'रामायण' के प्रमाणों द्वारा, अपितु वेदादि शास्त्रों के साथ साथ महात्मा कबीर, बाबा नानक आदि सन्तों की वाणियों के उद्धरण देकर 'मांसाहार करना पाप हैं' ऐसा सिद्ध किया है।

१४) क्रिश्चियन मत दर्पण :- इस ग्रन्थ में पण्डित जी ने बड़ी खोज के साथ ईसाई मत की समीक्षा की हैं। इसके अध्याय-शीर्षकों से ही पुस्तक में वर्णित सामग्री का अनुमान हो जाता हैं, जो इस प्रकार हैं :-

प्रथम अध्याय	–	'मसीह खुदा का बेटा नहीं, यूसुफ नज्जार का पुत्र था'
द्वितीय अध्याय	–	'मसीह निष्पाप नहीं किन्तु पाप-युक्त था'
तीसरा अध्याय	–	'मसीह के चमत्कार'
चतुर्थ अध्याय	–	'बाईबल का खुदा न दयालु, न चमत्कारी, किन्तु अत्याचारी'
पंचम अध्याय	–	'ईसाई मत संसार में किस प्रकार फैला'
षष्ठ अध्याय	–	'तसलीस और उसका आरम्भ'

सप्तम अध्याय - 'ईसाई सम्प्रदायो और बाईबिल का अन्वेषण'
अष्टम अध्याय - 'ईस्वी घटनाएं (मसीह और इन्जील सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं का सर्वेक्षण)'

१६) सदाकत ए इस्लाम :- यह ट्रेक्ट एलन हयूम महोदय द्वारा लिखित 'दलाएल अग़लाते इल्हाम' के उत्तर में लिख गया हैं। पं॰ जी ने बड़े तर्कपूर्ण ढंग से ईश्वरीय ज्ञान की सत्यता पर प्रकाश डाला हैं।

१७) सत्य धर्म का सन्देश :- १८७१ ईस्वी में एक पुस्तक अमरीकन्न मिशन प्रेस, लुधियाना से दीने हक्क की तहकीक नाम से प्रकाशित हुई। उसके पृष्ट १२ से २८२ तक हिन्दू धर्म पर आक्षेप किए गए। वैदिक धर्म के दीवाने आर्य पथिक को यह कैसे सहन हो सकता था कि कोई वैदिक (हिन्दू) धर्म के बारे में अनाप-शनाप करे या छापे। आर्य पथिक ने सत्य धर्म का सन्देश नाम से यह पुस्तक लिखकर उसी पूर्वोक्त पुस्तक में वर्णित आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर दिया हैं। आक्षेप ईसाई पादरी द्वारा किए गए थे। पण्डित जी ने हर आक्षेप की धज्जियाँ उड़ा दीं और उल्टे उन्हें अपने ही गिरेबान (इन्जील) में झांकने को मज़बूर कर दिया।

१८) निजात की असली तारीफ़ (मोक्ष का वास्तविक लक्षण) :- यह एक शास्त्रार्थ हैं, जो वैदिक धर्म के 'मोक्ष' विषयक सिद्धान्त को लेकर सय्यद गुलाम कादिर शाह तथा पण्डित लेखराम के बीच हुआ था। इसके प्रबन्धक सरदार ठाकुर सिंह जी थे।

१९) सदाकते ऋग्वेद (ऋग्वेद की सत्यता) :- 'अब्दुल्ला आथम' नामक पादरी ने वैदिक धर्म के पवित्र ग्रन्थ 'ऋग्वेद' की सत्यता और उसके सनातन होने पर कुछ प्रश्न उठाए थे। पण्डित जी ने उन्हीं का उत्तर सदाकते ऋग्वेद नाम से दिया था।

२० नियोग का मन्तव्य :- एक ईसाई प्रचारक टी. विलियम्स ने ऋग्वेद के यम-यमी बड़े ही असभ्य शब्दों में आक्षेप किए थे। पण्डित जी ने यम-यमी सूक्त का अपनी पुस्तक में यथार्थ प्रकट किया और ईसाई मत के ही ऐतिहासिक उदाहरणों से नियोग-व्यवस्था को उचित ठहराया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि नियोग का असली उद्देश्य क्या हैं ?

२१) सत्य सिद्धान्त और आर्य समाज की शिक्षा :- यह एक बड़ा ग्रन्थ हैं। इसके दो भाग हैं। कोई ईसाई मत के प्रतिवादी पं॰ खड्ग सिंह हुए है। यह कोई वास्तविक व्यक्ति है भी या कल्पना से झूठ-मूठ ही विरोधियों ने नाम छाप दिया था - यह भी ज्ञात नहीं। इसके नाम से आर्य समाज के सिद्धान्तों पर आक्षेप करते हुए एक पुस्तक छापी गई, जिसमें छः व्याख्यान हैं। उन्हीं छः व्याख्यानों को आधार बनाकर पण्डित जी ने प्रत्येक आक्षेप का उत्तर दिया अपनी पुस्तक के पहले भाग में दिया है तथा दूसरे भाग में वेदों के इल्हामी होने को भी सिद्ध किया है।

पण्डित जी की कुछ रचनाओं का सार या परिचय पाठकों के सामने इसी उद्देश्य से रखा गया हैं कि वे पण्डित जी की विद्वत्ता, उनकी तर्कशैली, उनकी युक्तियों और वैदिक धर्म के साथ-साथ ईसाई मत, अहमदी-मुस्लिम मत आदि के इतिहास और धर्म ग्रन्थों से उनकी गहरी पैठ का अनुमान लगा सकें। यह तो निश्चित है कि विधर्मयों द्वारा वैदिक (हिन्दू) धर्म पर किए गए हर वार का भरपूर जवाब पण्डित लेखराम ने अपने अचूक तर्क-तीरों से भरी लौह-लेखनी से हमेशा ही दिया है। यही तो वैदिक धर्म का दीवानापन है। उन्होंने जीवन भर लिखा और व्याख्यान दिए, अन्तिम इच्छा भी यही व्यक्त की कि आर्य समाज में तहरीर और तकरीर का काम बन्द न हो, क्योंकि सत्य तक पहुँचने और उसको प्रचार-प्रसार करने का यही सही माध्यम है।
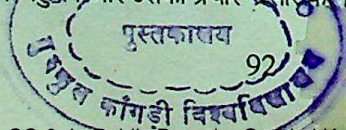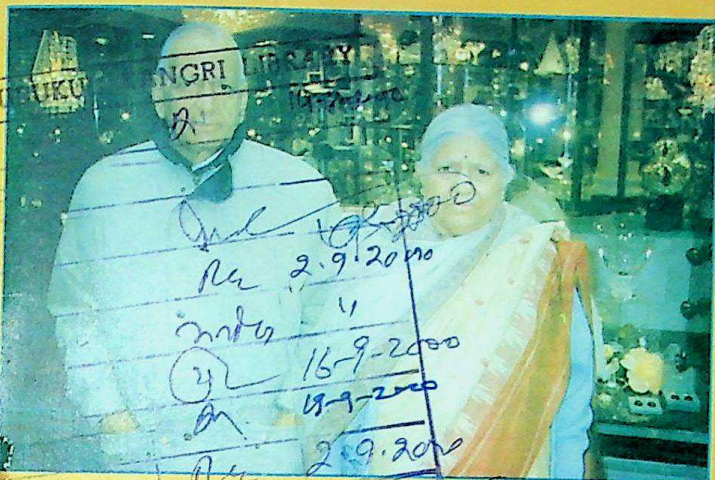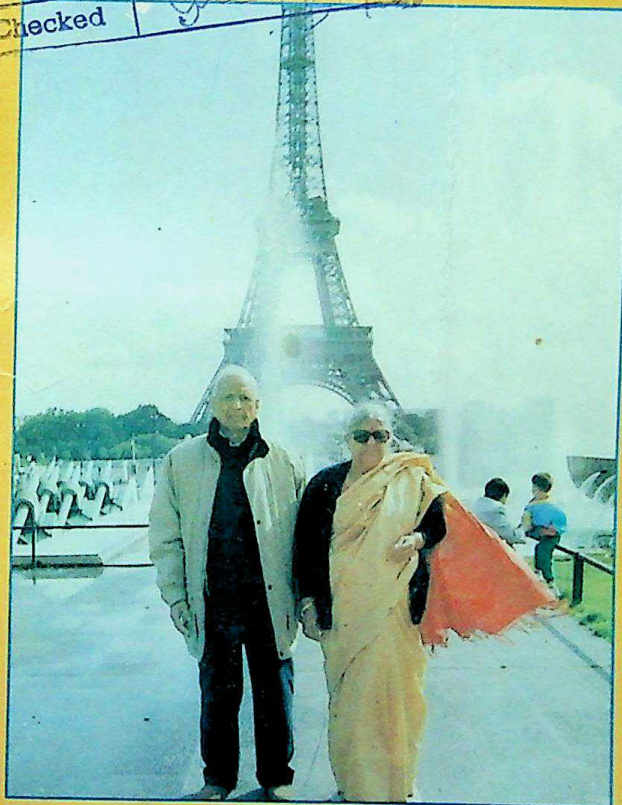
श्री हरबंस लाल शर्मा
धर्मपत्नी सहित यज्ञ करते हुए